विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठसंख्या
1	पर्यावरण का संकट और समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. सतीश पाण्डेय	
2	अध्यापकों में भाषा कौशल का विकास	डॉ. गीता दूबे	
3	Role of Teleconferencing in Globalizing Teacher Education	Dr. Shweta Sood	
4	संस्कृत साहित्य का हिंदी नाटकों पर प्रभाव : एक अनुशीलन	डॉ. दिनेश पाठक	
5	Empowerment of Women and The Role of Public Policy	Dr. Suman Singh	
6	Legal Acts Related to Self Defence	Shri Shankar Andhale	
7	Basics of Computer	Miss Vaishali Nivdunge	
8	मराठी भाषेचे अंतरंग	डॉ. मीनाक्षी ब-हाटे	
9	हिन्दी एवं संस्कृत-व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन	सुश्री एल्. सविता आर्या	
10	पारंपारिक संस्कृत संस्थानों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की प्रासंगिकता	श्रीमती अंजु शर्मा	
11	बड़ों के प्रति ऐसा हो व्यवहार	मुकेश शर्मा	
12	शिक्षा	सस्मिता राणा	
13	जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के चार शिष्य	विकास कुमार पाण्डेय	
14	रामचरितमानस में निर्गुण और सगुण ब्रह्म का समन्वय	रविशंकर पाण्डेय	
15	धरती के लाल	चन्द्रमा पौड्याल	
16	पर्यावरण प्रदूषण की समस्या	गोपाल पौड्याल	
17	लाडली बेटी है ये हिन्दी	सुवृत्ति आर्या	
18	उच्चतम न्यायालय एवं न्यायिक सक्रियतावाद	रवि कुमार आर्य	
19	भारतीय संविधान तथा संरक्षणात्मक भेदभाव	कुन्दन गर्ग	

20	Grammar	Jayashri Bal
21	The Sweet Day	Priyanka Mahapatra
22	I am an Indian	Malli Mani Rana
23	*The World - Renowned Nose :* A Satire On Modern India	Vighnesh Iyer
24	*Things Fall Apart*: The Story of A Proud Clansman and His Downfall	Patanjali Sharma
25	Decolonising the Mind	Nitesh Verma
26	The Position of Women in Indian Society	Asha Chheda
27	Death as a Fourth Charecter in the Quite American	Ninada E. M.
28	A Poem for my Mom	Vishwas Bhaskar Mahajan
29	ती वेडी विचारते मला......	जगन्नाथ आर्य
30	प्रेम कुणावर करावे?	वैभव आर्य
31	''वास्तू'' एक अद्भुत शास्त्र	सचिन पांडुरंग जंगम
32	संस्कृत विद्यापीठामध्ये मराठीची आवश्यकता	प्रिया मंजुळे

परिशिष्ट

Department of Modern Subjects: A Report i

सम्पादक की कलम से

''वन्दे वाणीविनायकौ''

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.) देश के विभिन्न राज्यों में ग्यारह (11) परिसरों में व्याप्त है । इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है । उन्हीं ग्यारह परिसरों में से एक परिसर क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ नाम से विद्याविहार मुम्बई में अपनी कुछ विशेषताओं से विभूषित है । इस परिसर में पारंपारिक पद्धति से संस्कृत शिक्षण के साथ ही आधुनिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती है । मुम्बई परिसर में संस्कृत के व्याकरण विभाग, साहित्य विभाग, ज्योतिष विभाग, शिक्षा शास्त्र विभाग के साथ ही आधुनिक विभाग भी एक सम्पन्न विभाग है । आधुनिक विभाग के अन्तर्गत हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी राजनीति विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, संगणक एवं पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन अध्यापन किया जाता है ।

हमें यह बताते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि जहाँ एक ओर पारंपरिक संस्कृत विभागीय पत्रिका का प्रकाशन हों रहा है वहीं दूसरी ओर आधुनिक विभाग को भी विभागीय पत्रिका प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । 'वैभाषिकी' नामक इस पत्रिका में तीन भाषाओं में-हिंदी, अंग्रेजी एवं मराठी भाषा में शोध पत्र, आलेख, कविताएं एवं कहानी आदि महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

भारत वर्ष विविध भाषा भाषियों का देश है । इसी को ध्यान में रखते हुए परिसर में अध्ययनरत सभी छात्रों का विविध भाषा सम्बन्धित समुचित विकास हो एवं समस्त भारतीय भाषाओं के प्रति इनके मन में सम्मान की भावना जगे, एतदर्थ इस पत्रिका (वैभाषिकी) को तीन भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है ।

इस पत्रिका के प्रकाशन में परिसर प्राचार्य प्रो. एम्. चन्द्रशेखर जी का मार्गदर्शन हमें प्राप्त हुआ है । अत: उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं । साथ ही शिक्षा शास्त्र विभागाध्यक्ष प्रो. मदन मोहन झा जी का सुझाव एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, इसके लिए उनके प्रति आधुनिक विभाग आभारी है । व्याकरण विभागाध्यक्ष प्रो. प्रकाशचन्द्र जी का, साहित्य विभागाध्यक्ष प्रो. ई. एम. राजन जी का, व्याकरण विभाग के वरिष्ठ आचार्य प्रो. बोधकुमार झा जी का साथ ही अन्य विभागीय सहयोगी प्राध्यापकों का जो उत्साहवर्धन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उनके प्रति व्यक्तिश: आभार व्यक्त करते हैं । पत्रिका प्रकाशन में टंकण मुद्रण महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु श्रीमती मनीषा शिंदे का जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए हम साधुवाद देते हैं एवं अपने सम्पादक मण्डल के सम्माननीय सदस्य गणों का और छात्र प्रतिनिधियों का भी आभार प्रकट करते हैं । आशा है हमारा यह प्रथम प्रयास सभी को पसंद आयेगा । आपका सहयोग एवं सुझाव हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

सम्पादक

पर्यावरण का संकट और समकालीन हिन्दी कविता

✍डॉ. सतीश पाण्डेय

भूमंडलीकरण बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आरम्भ होनेवाली वह प्रक्रिया है जो वित्तीय पूंजी निवेश तथा उत्पादन और बाजार के आधार पर राष्ट्रीय सीमा से परे विश्व भर में निरंतर विकसित होती रही है लेकिन यह प्रक्रिया सिर्फ आर्थिक मामलों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इससे सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन प्रभावित हुआ है । इसके प्रभाव में ही आकर पुरानी आस्थाएँ बदलने लगी हैं । इतिहास और विचारधारा के अंत की घोषणा की जाने लगी है । राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम को हाशिये पर धकेल कर बस कुछ ग्लोबल बना दिया गया है । टेलीविजन ने एक ऐसे आभासी संसार की रचना की है जिसमें स्थानगत दूरियाँ तो कम हो गई हैं लेकिन आपसी मेल-जोल नितांत कम होता गया है । इसी क्रम में जो पण्य नहीं था उसे भी बाजार की वस्तु बना कर एक ऐसी संस्कृति शुरू कर दी गई है जिसका सारा ध्यान लाभ कमाने पर केन्द्रित है ।

सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की इस उथल-पुथल ने कई ऐसे गंभीर संकट उत्पन्न कर दिए हैं जिनसे जूझना जरूरी हो गया है । वृहत्तर सामाजिक दायित्वों से जुडा रचना कर्म होने के कारण समकालीन कविता मनुष्य के सामने खडे इन सभी तरह के संकटों से जुझती नजर आती है। पर्यावरण का संकट भी ऐसा ही एक संकट है जिसके प्रति लगभग सभी सजग कवियों ने अपनी प्रतिबद्धता दर्शायी है । राजेश जोशी के शब्दों में कहें तो इसका प्रमुख कारण यह है कि, ''कविता संभवत: हमारे समय की वह आखिरी आवाज है जिसे बाजार और हिंसा अभो तक मलिन और गुमराह नहीं कर सकी है ।'' (प्रगतिशील वसुधा, पृ. 56-57, जनवरी-जून 2003)

पर्यावरण के इस संकट का मुख्य कारण विकास परियोजनाएँ रही हैं । वस्तुत: भूमंडलीकरण का एक बडा नारा रहा है विकास । इसी विकास के नाम पर जंगल उजाड हो रहे हं। नदियों की अविरल धारा बाधित होकर डूब की स्थिति पैदा कर रही है, औद्योगिक कारखानों के कारण जल प्रदूषित हो रहा है और उनके द्वारा प्रदूषित वायु उत्सर्जन के कारण सांस लेना भी दूभर हो रहा है । यूरेनियम के कारण विकिरण से गंभीर मानवीय संकट पैदा हो रहा है । इन्हीं सब ने ऐसा पर्यावरण जन्य संकट पैदा कर दिया है जो समूचे विश्व के समक्ष एक बडी चुनौती बनता जा रहा है । समकालीन कवियों ने इस चुनौती को अलग ढंग से स्वीकार किया है । वैसे तो प्रकृति से कविता का जुड़ाव सदा से रहा है किन्तु आज की कविता में उसके प्रति सिर्फ रूमानी आग्रह नहीं

रह गया है । अब वह महज आलंबन-उद्दीपन और मानवीकरण की वस्तु नहीं रह गई है । आज का कवि प्रकृति को मनुष्य की जिजीविषा और उसके संघर्ष के साथ जोडकर देखता है । वह उन प्राकृतिक बदलावों के प्रति ज्यादा संवेदनशील दिखाई देता हैजो औद्योगिक-वैज्ञानिक प्रगति के कारण उत्पन्न हो रहे हैं तथा जो सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए खतरे की घंटी बनते जा रहे है । वस्तुत: प्रकृति और प्रेम वे मूल स्रोत रहे हैं, जिनसे आज की कविता चेतना, प्रेरणा और ऊर्जा ग्रहण करती है और इनसे प्राप्त शक्ति को पूरी समझ के साथ उस आम आदमी की रक्षा के लिए इस्तेमाल करना चाहती है जिसको तोडने के लिए आज की मनुष्यता-विरोधी बाजार व्यवस्था की तमाम ताकतें एक साथ संगठित होती नजर आती है । मदन कश्यप इन ताकतों के षड्यंत्र का पर्दाफाश करते हुए पूरी दूनिया के प्रति अपनी चिन्ता जाहिर करते हैं:

वे पेडों को काटना नहीं चाहते, / उनका हरापन चूस लेना चाहते हैं ।
वे पहाड़ों को रौंदना नहीं चाहते,/ उनकी दृढता निचोड़ लेना चाहते हैं ।
अगर पूरी हो गई उनकी चाहतें,/ तो जाने कैसी लगेगी दुनिया।

(उन्नयन-१७, पृष्ठ ११७)

बाजार के कारण मनुष्य का यह रवैया निश्चित रूप से चिन्ता का विषय है क्योंकि प्रकृति से मनुष्य का लगाव इतना गहरा रहा है कि, दीर्घ काल से प्रकृति के गुण मनुष्य की अंत:प्रकृति का हिस्सा बने रहे हैं । प्रकृति का स्वभाव स्वार्थपूर्ण एवं संकुचित नहीं होता । मिट्टी, हवा, पानी, पेड़-पौधे स्व तक सीमित नहीं रहते । इनके संसर्ग में पले-बढ़े मनुष्य का स्वभाव भी स्वकेन्द्रित नहीं रहा है । ऐसे में यदि आज का मनुष्य स्वार्थ केन्द्रित हो जाता है तो कवि हृदय का चिंतित होना स्वाभाविक ही है । राजेश जोशी इसके मूल में आज की सुविधाप्रियता मानते हैं । आज हम प्रकृति से संपर्क रखना चाहते हैं किन्तु सुविधाओं से वंचित भी नहीं होना चाहते । इस मन:स्थिति को संकेतित करते हुए राजेश जोशी लिखते हैं-

नदियों से बातें करना चाहता हूँ इस समय / पर टेलीफ़ोन पर यह मुमकिन नहीं है
उन दरख्तों का भी मेरे पास कोई नंबर नहीं / जो अक्सर रास्तों में मिल जाते हैं
परिंदो के पास कोई मोबाइल होगा / इसकी कोई उम्मीद नहीं
जिनसे बतियाने की इच्छा होती है / उनके पास तक ही जाना पड़ता है हर बार

(चाँद की वर्तनी, पृष्ठ १००)

नदियों, दरख्तों और परिंदो से बतियाना उनके जैसा नि:स्वार्थ होकर ही संभव हो सकता है लेकिन आज का सुविधाजीवी मनुष्य ऐसा नहीं कर रहा है । उसे यह समझना होगा कि प्रकृति से

जुड़ने का कोई शॉर्ट कट नहीं होता । सुविधा भोगी शॉर्ट कट हमें हमारी जड़ों से काटकर सुखा रहा है । यह चिंता ही आज के कवि की प्रमुख बेचैनी बन जाती है ।

प्रकृति से मनुष्य और पशुजगत का साहचर्य समान रूप से रहा है लेकिन मनुष्य ने विकास के नाम पर जो स्वार्थपरता का रास्ता अपनाया है, उसने उसे जानवर बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है । आदमी जानवर न बनने पाये इसके लिए प्राकृतिक तत्वों आर जानवरों से उसका मानवीय रिश्ता बना रहना ज़रूरी है । प्रकृति, जानवर और मनुष्य के इस संश्लिष्ट रिश्ते की सार्थक पड़ताल लीलाधर जगुड़ी ने 'दूसरे शरीर की खोज' कविता में की है । यह एक बूढ़े बैल की स्वप्न-कथा है जिसमें एक बूढ़ा बैल सपने में एक पुष्ट बीज के रूप में परिवर्तित हो जाता है । फिर उस बीज को वृक्ष के रूप में बदलते हुए देखता है जो आदमियों, पशुओं और पक्षियों की यादों में हरियाली का उदग्र द्वीप है लेकिन इस स्वप्न का अंत भयानक होता है-

धीरे-धीरे बैल ने आँखे खोलीं और देखा कि/पेड़ का पूरा छत्र काँप रहा है/
कुल्हाड़े पड़ रहे हैं/पेड़ नाच रहा है/थोड़ी देर बाद फुनगी मुकुट की तरह टेढ़ी हुई/
और पेड़ एक सम्राट की तरह गिर पड़ा/
चरचराते हुए उसके प्राण हजारों पखेरूओं की तरह उड़ पड़े/
बूढ़ा बैल उठा और मारे डर के पोंकता हुआ ऐसा दौड़ा/जैसे कि जवान हो/
भय भी शक्ति देता है...

बैल और पखेरुओं के जीवन में यह पेड़ अंतरंगता से शामिल है । उसके कटने का अर्थ है इन पखेरूओं का बसेरा उजड़ना और बैल के लिए उसकी सुखद छाया का खत्म होना । बैल का पोंकना भय का प्रतीक है और अपनी सारी शक्ति लगा कर भागना जीवन के उजड़ने का विरोध है। पेड़ का होना पृथ्वी का हरा-भरा होना है । अत: पेड़ पर आया संकट मनुष्यता पर आया हुआ संकट है क्योंकि पेड़ का अस्तित्व मनुष्य के कारण नहीं है बल्कि मनुष्य पेड़ों की वजह से मनुष्य है । इसलिए मंगलेश डबराल मानते हैं कि पेड़ में पृथ्वी और आकाश एक साथ मौजूद हैं । जब हम नहीं थे, तब भी पेड़ थे । वे पेड़ सिर्फ उगे नहीं थे बल्कि वे बने थे करोड़ो चिड़ियों की नींद से । इसीलिए आज का कवि जीने के लिए पेड़ से थोड़ी सी छाँव, थोड़ी सी प्राणवायु और ऊर्जा के लिए भोजन मांगते हुए अपनी कृतघ्नता को भी याद करता है-

लेकिन क्यों मांग रहा हूँ तुमसे यह सब?/आखिर किस हक से?/
जब मैंने अपने तरह-तरह के स्वार्थों की पूर्ति के लिए/ सदा ही उखाड़ी हैं तुम्हारी बाहें
सदा ही नोचे हैं तुम्हारे रोम-रोम/सदा ही छीने हैं तुम्हारे आभरण-पुष्प/

सदा ही काटा है तुम्हारा मेरुदंड/सदा ही सुखाई है तुम्हारी जड़ों की मिट्टी/
तो फिर किस प्रत्याशा में मांग रहा हूँ तुमसे यह सब आज/अपना जीवन बचाने की
उत्कंठा में? मेरी अब तक की इस घोर कृतघ्नता के लिए/मुझे क्षमा कर दो वृक्ष/
मुझे कोई हक नहीं जीने का/तुम्हारे बिना अब इस धरती पर ।

(उमेश चौहान, लमही, अक्टूबर-दिसंबर 2011, पृष्ठ-71)

पेड़ों के प्रति मनुष्य के इस स्वार्थी रवैये के विरोध में पेड़ों के आक्रोश की ओर संकेत करते हुए विष्णु खरे कहते हैं कि जब बादल, नदियाँ, जानवर और चिड़ियाँ सुनते हैं पेड़ों की आखिरी साँसों को तो वे मिलकर शाप देते हैं । जानवर और चिड़ियाँ तो कहीं और चले जाते हैं घेर कर मार दिए जाने के लिए लेकिन वे बादल और नदी से इसका बदला लेने का वचन लेते हैं। इसके भयंकर परिणाम कभी सूखे के रूप में सामने आते हैं तो कभी बाढ़ के रूप में-

बादल और नदियाँ सूरज हवा और धरती से मिलकर / अपना निर्मम और व्यापक बदला लेते हैं बारी-बारी से कभी सूखते हुए, कभी डुबोते हुए / और तपते हुए मैदानों या डूबे हुए आसरों में छोड जाते हैं सूखी या फूली हुई काली लाशें / ज्यादातर असहाय बच्चों औरतों आदमियों और अपाहिजों की । भूख से सूखे और पानी से सूजे काले शरीरों के / खुले मुंह से जो शाप निकलता है / वह वही है जो पेडों ने दिया था । (पिछला बाकी, विष्णु खरे, पृ. 87)

इसी शाप से मनुष्यता को बचाने का प्रयास करते हुए नरेश सक्सना पेडों के प्रति अपना मानवीय रवैया प्रस्तुत करते है -

अंतिम समय जब कोई नहीं जाएगा साथ । एक वृक्ष जाएगा ।
लिखता हूं अंतिम इच्छाओं में । कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार ।
ताकि मेरे बाद । एक बेटे और एक बेटी के साथ । एक वृक्ष भी बचा रह संसार में ।

(समुद्र पर हो रही है बारिश, नरेश सक्सेना, पृष्ठ 35)

वृक्ष ही नहीं प्रदूषित होकर नदी के गायब होते जाने के प्रति भी आज का कवि समान रूप से चिंतित है । जो नदी कभी जल का स्रोत थी, उन्मुक्त विचरण करनेवाली डोंगी की क्रीडा-स्थली थी, आज वह गायब होती जा रही है । कृष्णामोहन झा के अनुसार-

नदी मतलब नाव, नदी मतलब प्यास, नदी मतलब भोजन
नदी मतलब त्याग, नदी मतलब उत्सर्ग, नदी मतलब विसर्जन

लेकिन अब नदी का यह अर्थ गायब हो गया है । अब नदी का मतलब होता है नगरों-महानगरों का कचरा ढोने वाला बहुत बडा नाला । अब नदी का मतलब होता है स्याह

बदबूदारलसलसाते पानी का मरियल प्रवाह । इतना ही नहीं, भूमंडलीकरण के कारण अब नदी का नया संदर्भ कवि इस प्रकार देता है ।

नदी मतलब रंग बिरंगे वॉटर प्युरिफायर और मिनरल वॉटर । नदी मतलब अरबों रूपये की सरकारी योजनाएँ । नदी मतलब सेमिनार, नदी मतलब एनजीओ ।
नदी मतलब पुस्तिका, नदी मतलब विमोचन ।
नदी मतलब बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लपलपाती जिह्वा ।
नदी मतलब वर्ल्ड बैंक, नदी मतलब फोर्ड फाउंडेशन ।

(समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2011, पृष्ठ 51)

नदी और वृक्ष पर आए संकट की तरह वायु प्रदूषण भी पर्यावरण वादियों के लिए एक खुली चुनौती बन गया है । औद्योगिक इकाइयों के प्रदूषित गैस-उत्सर्जन के कारण खुली हवा में सांस ले पाना भी कितना कठीन हो गया है । इस ओर संकेत करते हुए एकांत श्रीवास्तव लिखते हैं कि, साँसों के रास्ते कोहरा, धुंध और धूल मनुष्य के सीने में एकत्रित होती जाती है । वही सब ठसका बन कर उठता है रात बिरात और खाँसते-खाँसते दुखने लगती है पसलियाँ । अब यहाँ वह ताजी हवा नहीं मिलती जिसे अपने फेफडों में भरकर गाँव से उन्होंने लाया था-

यहाँ है घातक केमिकल की तीखी गंध / पसलियों में सुराख करती हुई /
और सुराख से बहता हुआ खून / अब यहाँ नहीं है /
ग्वालिन के फलों की महक / जिसे तुम गाँव से लाये थे ।

(एक्सरे, धरती अधखिला फल है, एकांत श्रीवास्तव, पृष्ठ 101)

इन घातक स्थितियों के कारण ही एकांत श्रीवास्तव इस बात पर आश्वस्ति व्यक्त करते है कि, जहाँ हर रात एक दु:स्वप्न है / हर एक दिन आघात / हर सांस जहां जलते हुए जंगलों को / पार कर के आती है / वहाँ आश्वस्ति है कि / अब भी धडकता है यह दिल / एक मिनट में बहत्तर बार / अब भी सामान्य है गति हृदय की ।(वही, पृष्ठ 103)

भूमंडलीकरण के इस विकास फार्मूले के दुष्परिणामों के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हुए चन्द्रकान्त देवताले ने भावी पीढी के संकटग्रस्त होने का संकेत किया है । 'कैसा पानी, कैसी हवा' कविता में वे लिखते हैं-

पर्यावरण संकट के इस दौर में दुनिया की बेहतरी चाहने वाली ताकतों के कहीं खो जाने की चिंता अनामिका ने अपनी एक कविता में अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त की है । पानी का पता पूछना या नदियों के दुबली हो जाने की चिंता प्रकट करना अत्यंत मारक लगता है-

नमस्कार, पानी! / कैसे हो? इन दिनों कहाँ हो? / नमस्कार, मेपल के पत्तों, / तुमको बरफ की शक्ल याद है न? / दूर वहाँ उस पहाड़ की चोटी पर उसका घर था / नमस्कार, नदियो!/ दुबली कितनी हो गयी हो / आँखों के नीचे पसर आए हैं साए । / क्या स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता? (वाक, अंक 10, पृष्ठ 136)

कवयित्री ट्रेन में मिलने वाले उस लड़के को खोजती है जिसकी आँखों में दुनिया की बेहतरी का सपना था । उसके नाम की चिट्ठी मंगल ग्रह से आई है । चाँद की मुहर भी उस पर है लेकिन बेहतरी का सपना आँखों में संजोने वाले का पता अधूरा है । उसे संतोष होता है कि कम से कम मिट्टी तो है ।

इस सबके बावजूद आज का कवि पूरी तरह निराश नहीं है । अशोक वजपायी मानते हैं कि एक पत्ती हरी दस्तक है / वह सुगबुगाहट है / वह कभी पूरी न हो सक्ने वाली / कविता का आदि शब्द है । इसीलिए वे अपने हाथों से पृथ्वी को उठाने के लिए मनुष्य का आवाहन करते हैं-

अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी / क्योंकि उसकी रेत और धूल में /
उसके पानियों और वनस्पतियों में / उसकी असमय सूख रही नदियों /
और अकाल-नग्न हो रहे पर्वतों में / उसकी अंधेरी खोहों में /
उसके उजाले अंखुवाते बीजों में / अब भी आशा बची है ।

(कहीं कोई दरवाजा, अशोक वजपायी, पृष्ठ 22)

भूमंडलीकरण से जुड़ी विकास योजनाओं के तहत बने बड़े-बड़े बांधों ने अनेक डूब क्षेत्रों को जन्म दिया है । इस डूब की चपेट में आने वाले क्षेत्रों के लोगों की पूरी सभ्यता और संस्कृति के लुप्त हो जाने की पीड़ा एकांत श्रीवास्तव की लंबी कविता 'डूब' में व्यक्त हुई है । कवि मानता है कि डूब गए गाँव की केवल दंतकथा शेष रह जाती है । वहाँ के घर, रास्ते, चौपाल और खेत-खलिहान आदि सब जल के नीचे डूब जाते हैं । कवि यह भी जानता है कि जो लोग स्वेच्छा से रोज़ी-रोटी की तलाश में गाँव से दूर जाते हैं, वे पुनः अपना खोया हुआ गाँव पा जाते हैं किन्तु डूब में खोये गए गाँव को वहाँ के विस्थापित लोग कभी भी नहीं पा सकते । सिर्फ उनकी स्मृति में यह गाँव बसा रहता है ।

जल एक तरफ जीवन दाता है तो दूसरी ओर कभी-कभी विनाशकारी बन कर वह जीवन को छीन भी लेता है । किन्तु ड्ब वाले ऐसे गांवों के जलमग्न होने में जल की नहीं बल्कि मनुष्य की मर्ज़ी होती है । जल तो निमित्त मात्र होता है । टिहरी, मणिबेली और हरसूद जैसी सभी जगहों की इस परिणति के मूल में मनुष्य की स्वार्थपरता ही कारणीभूत रही है । इस डूबक्षेत्र में मनुष्य

नहीं बल्कि मेंढक, साँप, घोंघे, घड़ियाल और जोंक जैसे जल-प्राणी रहते हैं । अपने इस विनाशकारी रूप के कारण जल को पेड़ों की छायाएँ भी डरावनी लगती हैं । वैश्वीकरण और विकास के इस युग में मशीनों की घरघराहट में बांसुरी की तान, ट्रेन की धधड़ाहट में पंडुक की आवाज़ या बाज़ार के शोर में आदमी की आवाज़ डूब जाती है । गाँव ही नहीं, वहाँ के देवी देवता और मंदिर भी डूब जाते हैं । इस तरह सब कुछ डूब जाता है पर लोगों का अपने गाँव से जुड़ाव नहीं खत्म होता । इसीलिए वे जनपद के उसी जल में पक्षी बनकर जीवन बिताने की इच्छा रखते हैं । उनका आशावादी मन इस विनाश के बीच भी उम्मीद नहीं छोड़ता । उन्हं जीवन के कुछ लक्षण बचे हुए दिखाई दे जाते हैं-

एक लालटेन जो बच गयी डूबने से / और गिरस्ती का थोड़ा सामान /
झिलंगी खटिया, एलुमिनियम की डेकची /
बांस की चटाई जिस पर करवट बदलत / बीतती है रात

(धरती अधखिला फूल है, पृष्ठ 122)

चाहे मणिबेली हो या हरसूद, ऐसे डूब क्षेत्रों के लोगों को व्यवस्था विकास संबंधी तरह-तरह के सपने दिखाती है लेकिन उस जमीन से गहरा जुड़ाव वहाँ के लोगों को वहाँ से जाने नहीं देता । इसीलिए पुलिस की लाठियाँ और गोलियां खा कर भी वे उस जमीन को छोड़ना नहीं चाहते । उनकी रगों में पोई के बीज की लालिमा घुल कर विरोध का स्वर बन जाती है । विरोध में उठी हर आवाज़ मेधा पाटकर बन कर हर चिंगारी को दावानल में तब्दील कर देती है । कवि लोगों के भीतर दहक रही व्यवस्था विरोध की इस आग को शब्द देते हुए कहता है-

देखो चढ़ता हुआ ज्वार / सुनो, धरती की धुकधुकी / धक...धक...धक...
कितनी बढ़ गयी है / लुहार धुकनी से झल रहा है हवा / पज रहे हैं भट्टी में औजार /
गरम लोहा ले रहा आकार । (वही, पृष्ठ 125)

विस्थापितों को पुनर्वास देना आसान नहीं होता क्योंकि विस्थापन वहाँ के लोगों का तो हो सकता है किन्तु उन लोगों की स्मृतियों में बसी वहाँ की 'पके धान की खुशबू', 'दीवार पर थापे गए कंडे के सूखे हुए निशान', 'पुरखों के पावों से बने रास्ते', 'झड़ गए फूलों की सुगंध में मंडराती तितलियों' आदि को कैसे पुनर्वास दिया जा सकता है । अत: कवि इन बड़े बांधों की आवश्यकता पर ही प्रश्नचिन्ह उठाता है-

नदियों की आग नहीं होती / पर तुमने लगाई नदियों से / हमारी बस्तियों में आग /
अभी तक तो नहीं थे बड़े बांध / फिर भी जी रहा था यह देश / पी रहा था पानी

सींच रहा था अपने पौधों को / जो बन ही जाते थे एक दिन पेड़ (वही, पृष्ठ 126)

कवि इन बड़े बांधों के लिए विश्व बैंक से लिए गए ऋणों के औचित्य पर ही प्रश्न खड़ा करता है जिसके व्याज से कई-कई पीढ़ियाँ भी उऋण नहीं हो पाएँगी । अत: वह पाताल की ओर ले जाती हुई विकास की नीतियों को खारिज करने का पक्ष-समर्थन करता है-

खारिज करो विश्व बैंक को, / ऋण को, विकास-नीति को /

जनहित में परिवर्तन जिसे स्वीकार नहीं / तुम दे नहीं सकते मुआवजा /

दे नहीं सकते पुनर्वास / तो बंद करो विस्थापन / विकास है यह आधुनिक /

या विनाश आदिवासियों का । (वही, पृष्ठ 126)

कवि मानता है कि विकास की इस आँधी ने समाज में निरंतर विषमताओं को जन्म दिया है अत: यह विकास नहीं बल्कि मनुष्यता और सत्ता के उन्माद की लड़ाई है । उसके अनुसार सत्ता ने अपने मद में आकर एक आँख की हिफाज़त में दूसरी आँख फोड़ देने या एक हाथ की चिंता में दूसरे हाथ को तोडने का पूरा प्रबंध कर रखा है । कवि इससे अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहता है-

गति के लिए चाहिए दोनों पाँव / दृश्य के लिए चाहिए दोनों आँखें /

कर्म के लिए चाहिए दोनों हाथ / देखो कि देश का एक हिस्सा /

कुचलता है दूसरे हिस्से को / जैसे साम्राज्यवाद ने कुचला उपनिवेशों को (वही, पृष्ठ 127)

विकास के नाम पर आदिवासियों की बस्ती के साथ-साथ जंगल, पहाड़ और नदियों का दुरुपयोग करते हुए उन्हें विनाश के मुँह में झोंक देना और इसके आधार पर संभ्रांत जन को सुविधाएं मुहैया कराना इस विकास तंत्र की असलियत है । किन्तु अब आदिवासी समाज भी सीधे संघर्ष के लिए संकल्पित हो रहा है । इसीलिए वह चुनौती देते हुए कहता है-

बंद करो राज्य तंत्र आर विकास तंत्र के अत्याचार

कि विष में बुझे हैं हमारे भी तीर / अपमानित है मनुष्यता

सम्मानित मनुष्यों के संसार में । (वही, पृष्ठ 127)

आदिवासी समाज को पता है कि सरकार द्वारा एक कुशल सेल्समैन की तरह बांध के पक्ष में वातावरण निर्मित किया जाता है और मनुष्यता को भूल कर दरिंदगी की सारी सीमाएं लांघते हुए देश को जोड़ने वाली नदी को तलवार की तरह इस्तेमाल किया जाता है । इस तरह देश को अमीर और गरीब के दो खेमों में बाँट दिया जात है । यह छल-कपट आदिवासी समाज को कम समझ में आता है क्योंकि उनका मन गंगोत्री के जल सा निष्कलुष होता है । पुलिस, ट्रक, बुल्डोजर उनके

मन में दहशत पैदा करते हैं लेकिन वे सीधे सादे आदिवासी व्यवस्था के इस छल को नहीं समझ पाते ।

इस लंबी कविता का बीज शब्द है 'अपनी धरती से प्यार' और केंद्रीय विधान है-'स्मृति भी आँख बन जाती है / जब अंधेरा हो घना / और जाना हो आगे' । 'डूब' में जलमग्न हुए गांवों के पास से नाव पर गुरजते हुए स्मृति की आँखों से सब कुछ दिखाई देता है । इसमें डोडके के पीले फूलों के साथ साथ बबूल के फूल, घाघर चिरई के पंजों के निशान के साथ साथ कुलेश्वर महादेव का मंदिर है तो महानदी के घाट पर तीन पत्थरों के चूल्हे पर पकता भात, सुस्ताते बैल और बैलगाड़ी, साड़ी का झुलना बांध कर बच्चे को लोरी सुनाती माँ और शकुंतला की मुंदरी की तरण किसी का चढ़ाया हुआ सिक्का आदि सब साफ दिखाई देता है । यह सब इस लिए दिखाई देता है कि इस धरती से लोग प्यार करते हैं । यह प्यार ही पृथ्वी का वसंत है-'कदंब के फूलने से वसंत नहीं आता / धरती को चाहने से आता है / कोयल के गाने से आम नहीं मौरते । प्रेम की इच्छा से मौरते हैं' ।

अपनी धरती से अटूट प्रेम रखने वाले आदिवासी आज सभ्यता के वृत्त से बाहर भले ही माने जाते हों लेकिन वे अपनी धरती को भरपूर चाहते हैं । महान सभ्यता की बड़ी कथा में उनकी जगह बहुत छोटी है लेकिन उनके दुख छोटे नहीं हैं । फिर भी उनमें सारा आकाश नाप लेने का साहस और इच्छाशक्ति है-'लेकिन वे छोटे पाँव हैं / जो लंबी यात्रा पर निकल पड़ते हैं / छोटे पंख सारा आकाश नाप लेते है ।' सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी वे हार मानने को तैयार नहीं होते-

पर अब तो नष्ट सब कुछ / हाय, जलमग्न वह संसार /
खत्म उसकी माया, जादू उसका खत्म / लेकिन हारेंगे नहीं /
हमें लड़ना होगा / कि फिर न हो काई गाँव मणिबेली
फिर न हो हरसूद (वही, पृ.133)

कवि इसे मनुष्यता और सत्ता के उन्माद की लड़ाई मानता है जिसके लिए समय का लोहा तप रहा है और भट्टी में औज़ार पज रहे हैं । कवि का यह भी मानना है कि सताये हुए आदमी की ललकार से सारा संसार हिल जाता है और उसमें यह शक्ति आती है सिर्फ अपनी ज़मीन से प्रेम करने के कारण-

घायल साँप / और सताये हुए आदमी से ज़्यादा खतरनाक /
और कुछ नहीं इस संसार में / कि साहस सिर्फ संघर्ष से नहीं आता /
उस प्यार से भी आता है / जो हम इस धरती से करते हैं (वही, पृष्ठ 134)

यह समय इतना कठिन एवं अन्यपूर्ण है कि अंधेरा खत्म ही नहीं हो रहा । लेकिन इस अंधेरे के बीच कुछ दूसरी आहटें भी सुनाई देती हैं । मसलन–जंजीरों के टूटने की आवाज़ें, गरम लोहे पर पड़ते घन की आवाज़े, कपाट के खुलने और धरती के करवट बदलने की आवाजें । इन्ही आवाज़ों के बीच जलपांखी की आवाज़ भी सुनाई देती है जो अपनी ज़मीन से कट जाने की टीस बन कर उसके व्यग्र और दुख भरे हृदय से उठती है–

हमे भी अब कभी मिलेगा नहीं / जल मग्न हमारा प्रांत /
हम भी इस जल के ऊपर उड़ते रहेंगे / भटकते रहेंगे जन्म–जन्मांतर तक
जल पांखियों की तरह / सन्नाटे की छाती में सुराख करती /
उठेगी हमारी पुकार / और बदले में कभी सुनाई नहीं देगी /
कोई आवाज़ लेकिन प्यार महकता रहेगा सबदिन /
जो हम इस धरती से करते हैं । (वही, पृष्ठ 134–135)

इस तरह वैश्वीकरण के तहत विकास की प्रक्रिया जहां सम्पन्न वर्ग को सुविधाएं मुहैया कराने के लिए आवश्यक प्रतीत होती है, वहीं अपनी धरती से प्रेम करने वाले आदिवासियों के विनाश का वह कारण भी बन जाती है । यह तथाकथित विकास प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ा प्रश्न तो ह ही, इसके अंतर्गत विस्थापन, पुनर्वास और वैश्वीकरण तथा पूंजीवादी षड्यंत्र के तहत वर्गीय विभाजन आदि तमाम ऐसे संदर्भ भी इससे जुड़े हैं जो समकालीन कवियों की चिंता का विषय रहे हैं । इन कवियों ने पर्यावरण की रक्षा के लिए चुनौती बन जाने वाले ऐसे सभी तत्वों के प्रति विरोध का स्वर प्रकट किया है तथा प्रकृति और पर्यावरण के साथ मानव जीवन का संतुलन बनाए रखने में ही विकास के नए मॉडल की सार्थकता मानी है ।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क. जे. सोमैया कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
विद्याविहार, मुम्बई–77

❖❖❖

अध्यापकों में भाषा कौशल का विकास

✍डॉ. गीता दूबे

गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है । गढ़ि–गढ़ि काढै खोट ।
भीतर हाथ लगाइके बाहर मारे चोट ॥

खजुराहो के अद्‌भुत शिल्प, स्वर सम्राज्ञी लता मंगेशकर के सुमधुर सुर, बिस्मिल्ला खाँ का शहनाई वादन एवं अटल जी का प्रभावपूर्ण व्याख्यान निश्चय ही किसी दक्षता का सूचक है । यही दक्षतानिपुणता, कौशलता, प्रवीणता, आदि शब्दों से अभिहित होती है ।

कौशल क्या है ?

किसी कार्य को करने में दो प्रकार की योग्यता आवश्यक होती है । सामान्य एवं विशेष । किन्तु बहुत से कार्य विशेष अभ्यास एवं परिश्रम की माँग करते हैं इसी अभ्यास एवं परिश्रम से व्यक्ति उस कार्य को सम्पन्न करने की विशेष क्षमता अर्जित कर लेता है । यही विशेष क्षमता कौशल कहलाती है । भाषा सम्बन्धी कौशल का अर्थ भाषा व्यवहार में कुशलता प्राप्त करना है । हम विचारों के आदान-प्रदान हेतु भाषा को साधन के रूप में प्रयोग करते है । वक्ता अपने विचारों को दसरे तक पहुँचाने के लिए उचित शब्दयुक्त वाक्य बोलकर वांछित सन्देश सम्प्रेषित करता है । दसरी ओर सन्देश ग्रहण करनेवाला व्यक्ति सुनकर वक्ता के आशय को समझ जाता है, सन्देश लिखित भी हो सकता है । ऐसी स्थिति में लिखना एवं पढ़ना इत्यादि क्रियाएँ होती है । इस प्रकार भाषा सम्प्रेषण के दो प्रकार होते है - मौखिक एवं लिखित । भाषा शिक्षण में मुख्यत: भाषा के लिखित रूप पर बल दिया जाता है, किन्तु अन्य शिक्षण में भाषा के मौखिक एवं लिखित दानों रूपों पर बल दिया जाता है । सुनना (श्रवण), बोलना (मौखिक अभिव्यक्ति), पढना (पठन) एवं लिखना (लेखन) भाषा के चार कौशल माने जाते हैं । एक कुशल अध्यापक के लिए चारों कौशलों में निपुण होना आवश्यक है । डॉ. शिखा चतुर्वेदी ने लिखा है कि ''व्यक्ति की सम्प्रेषण की क्षमता भाषा कौशलों की दक्षता पर ही निर्भर होती है । भाषा की प्रभावशीलता का मानदण्ड बोधगम्यता होता है । जिन भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं, उन्हें कितनी क्षमता से बोधगम्य कराते हैं, यह भाषा कौशलों पर निर्भर है ।''[1]

श्रवण कौशल - श्रवण शब्द 'श्रु' धातु से बना है । जिसक सम्बन्ध सुनने की क्रिया, ध्यानपूर्वक सुनना, अध्ययन करना आदि से है । डॉ. उमाशंकर मंगल के अनुसार-''वक्ता की ध्वनियों, शब्दों एवं भावों को कानों के माध्यम से श्रवण कर उसका अर्थ ग्रहण करने की क्रिया श्रवण कही जाती है । वक्ता जिस अभिप्राय या उद्‌देश्य से अपन विचारों की मौखिक अभिव्यक्ति कर रहा है, उस बात को पूरी तरह से ध्यानपूर्वक सुनकर, उसी अभिप्राय को ग्रहण करने की योग्यता ही श्रवण कौशल है ।''[2] एक अच्छे शिक्षक में श्रवण कौशल होना आवश्यक है । भारतीय शास्त्रों में विद्वान के लिए बहुश्रुत शब्द का प्रयोग किया जाता है । कबीरदास ने कहा है-मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हाथ । इस कौशल के विकास हेतु रेडियो पर आनेवाले गीतों, नाटकों, कहानियों

एवं वार्तालाप कार्यक्रम ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए । प्रवचन, भाषण, सस्वरवाचन, कविता पाठ, आदि को मनोयोग से सुनना, स्वर के उतार चढाव के अनुसार अर्थ ग्रहण करना, महत्वपूर्ण भावों एवं विचारों को संग्रह करना चाहिए । टेलीविजन के विविध चैनलों पर प्रसारित होने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों को ध्यानपूर्वक सुनने से श्रवण कौशल का विकास होता है । श्रुतलेख से भी श्रवण कौशल को विकसित किया जा सकता है । ग्रामोफोन एवं टेपरिकार्डर के माध्यम से कविता, कहानियाँ, महापुरुषों के भाषण, नाटक आदि सुनना चाहिए । टेपरिकार्डर द्वारा तो अपनी सुविधानुसार सुनकर इस कौशल में विकास किया जा सकता है ।

1. **बोलना (मौखिक अभिव्यक्ति)**

मौखिक अभिव्यक्ति का अर्थ है बोलना । इसे भाषण भी कहा जाता है । मौखिक भाषा का महत्त्वपूर्ण कौशल मुहँ से बोलकर अपने विचार अभिव्यक्ति से है । डॉ. उमामंगल ने कहा है-''जब व्यक्ति ध्वनियों के माध्यम से, मुख के अवयवों की सहायता से उच्चरित भाषा का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को प्रकट करता है तब उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहा जाता है ।''[3]

मौखिक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया सबसे जटिल होती है । क्योंकि एक ओर इसका सम्बन्ध भाषा की ध्वनि व्यवस्था से है । तो दूसरी ओर अर्थव्यवस्था से है । अध्यापक सभी के लिए आदर्श होता है । इसलिए अध्यापक में अभिव्यक्ति कौशल का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है । जब अध्यापक द्वारा बोलकर कोई बात कही जाती है तो उच्चारण कौशल अनिवार्य हो जाता है। इसमें अतिरिक्त अर्थपूर्ण सन्देश सम्प्रेषित करने के लिए बोलने की उचित गति, स्वर, बलाघात आदि कुछ अन्य बातें भी आवश्यक होती है । सस्वर-वाचन में भी इन सब बातों का अनुपालन करना पडता है ।

ध्वनियाँ उच्चारण का महत्त्वपूर्ण आधार होती हैं । अतः सभी ध्वनियों का अलग अलग एवं स्पष्ट मानक शब्दों में उच्चारण करना चाहिए । एक अध्यापक को संयुक्ताक्षर वाले शब्दों का का शुद्ध उच्चारण एवं बोलते समय सही बल एवं अनुतान का प्रयोग करना आवश्यक है । जब हम अलग अलग संवेगो को प्रकट करते है तब हमारी सुरलहर भी अलग अलग होती है । जैसे - अच्छा (स्वीकृति), अच्छा (आश्चर्य) । एक अध्यापक को बोलते समय बोलने की गति पर ध्यान रखना चाहिए न वह बहुत तीव्र हो न बहुत मंद । क्योंकि इन दोनों स्थिति में सही मौखिक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती । अध्यापक में मौखिक अभिव्यक्ति हेतु आत्मविश्वास, कथन में

स्पष्टता, प्रवाहपूर्णता, प्रभावशीलता, व्याकरण सम्मत भाषा एवं शुद्ध उच्चारण अवश्य होना चाहिए। वाणी के महत्व के विषय में कहा गया है कि,

'कागा काको धन हरे कोयल काको देत । ..... जग अपनो करि लेत ।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से पता चलता है कि, कक्षा में आधे से अधिक समय तक शिक्षक ही बोलता रहता है । अत: शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को भी बोलने का अवसर प्रदान करे। शिक्षक को बोलते समय विराम चिह्नों का उचित प्रयोग करना चाहिए । नए नए शब्दों का निर्माण एवं प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए । मौखिक अभिव्यक्ति में कुशलता हेतु टेपरिकार्डर की सहायता लेना चाहिए । कहानी पढना, भाषण, वार्तालाप, अभिनय में भाग लेना, समाचार पत्र का बोलकर पढना भी मौखिक अभिव्यक्ति के विकास में आवश्यक है ।

2. **पढ़ना (पठन कौशल)**

पठन कौशल का अर्थ भाषा की लिपि को पहचान कर उच्चरित करना एवं अर्थ ग्रहण करना है । लॉग मैन डिक्शनरी ऑफ एप्लाइड लिंग्विस्टिक्स के अनुसार, पठन कौशल का अर्थ है- किसी लिखित पाठ्य वस्तु का इस प्रकार से प्रत्यक्षीकरण करना कि उसकी सामग्री का अवबोधन हो सकें । यह एक प्रकार से मौन पठन का रूप माना गया है । लिखित पाठ्यवस्तु का स्वरसहित उच्चारण भी पठन कौशल है । एक प्रकार से यह पठन कौशल मौखिक अभिव्यक्ति कौशल पर आधारित है । पढना एक कला है एवं पठन कौशल में एक शिक्षक को पारंगत होना चाहिए । एक अध्यापक के वाचन में स्पष्ट अक्षरों एवं शब्दों का उच्चारण, वाचन की मधुरता, सुस्वरता, बल एवं विरामचिह्नों का ध्यान, उचित गति एवं यति का ध्यान, स्वाभाविक प्रवाह एवं स्वरारोह वाचन साथ ही भावों के अनुकूल उचित मुद्रा का होना आवश्यक है । शिक्षक छात्र होता है । पठन प्रभावी है या नहीं इसके लिए वाचन के समय कक्षा पर दृष्टि अवश्य डालनी चाहिए । उत्साह एवं प्रसन्नचित्त से वाचन होना चाहिए, वाचन के समय अनावश्यक शारीरिक गतिविधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए । सस्वर एवं अभिव्यक्ति के समय एक शिक्षक को सदैव श्रोत्राओं एवं कक्षा के स्तर का ध्यान रखना चाहिए । सुनने वाले की क्षमता के अनुसार पठन होना चाहिए । शिक्षक को पठन कौशल की शिक्षण की प्रविधियों-वाक्य विधि, कहानी विधि, साहचर्य विधि, संयुक्त विधि, कविता विधि का ज्ञान होना चाहिए ।

3. **लिखना (लेखन कौशल)**

मौखिक भाषा की ध्वनियों को जिन विशिष्ट चिह्नों द्वारा लिखित रूप में व्यक्त करते हैं उसे लिपि कहते हैं । लिपि ज्ञान से ही भाषा के मौखिक रूप को लिखित रूप में बदला जा सकता है ।

भाषा विशेष में स्वीकृत लिपि प्रतीकों के माध्यम से भावों के विचारों को अंकित करने की कुशलता को लेखन कौशल कहा जाता ह ।[5]

लेखन कौशल भाषाई कौशल विकास की दृष्टि से अंतिम कौशल है । अन्य कौशलों के माध्यम से अर्जित कुशलताएं लेखन कौशल के विकास में भरपूर सह्योग देती हैं और लेखन के विकास में अन्य कौशलों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप में दृढ़ीकरण हो जाता है । लेखन कौशल में तीन बातों का विशेष महत्व होता है-1) वर्ण 2) वर्तनी 3) रचना ।

1) **वर्ण** -

भाषा के लिखित रूप की अभिव्यक्ति निश्चित लिपि प्रतीकों के माध्यम से की जाती है । यह लिपि प्रतीक वर्ण और संकेत दोनों में हो सकते हैं । अध्यापक में लेखन कौशल विकास के लिए भाषा की आधारभूत लिपि प्रतीकों को सीखना प्राथमिक आवश्यकता है । अत: वर्ण रचना कौशल में वर्णो की रचना की समानता के आधार पर इनके कुछ समूह बना लेना चाहिए । जिससे शिक्षण में सहायता मिलती है ।

2) **वर्तनी**

शब्दों को लिखने में वर्णों का जो विशेष क्रम है उसे वर्तनी कहते ह ।एक अच्छे अध्यापक कोशुद्ध वर्तनी लेखन का अभ्यास करना चाहिए । वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धि से बचने के लिए सीखे गये वर्तनी में शुद्धता एवं नये शब्दों का ठीक से ज्ञान होना चाहिए । अध्यापक को चाहिए कि पुस्तक पढ़त समय अशुद्ध शब्दों का ध्यान रखें, साथ ही प्रत्यय, सन्धि, काकल्य आदि का ज्ञान करते चलना । निबन्ध, पत्र, सारलेखन आदि में वर्तनी की शुद्धता पर ध्यान रखना चाहिए ।

3) **रचना**

रचना से अभिप्राय है विचारों को लिपिबद्ध रूप से अभिव्यक्त करना सीखना । रचना के दो अंग है - नियंत्रित रचना - इसमें भाषा सम्बन्धी एवं विषय सम्बन्धी नियमों का पालन करते हुए व्यावहारिक पत्र, अधिकारियों के पास प्रार्थना पत्र, संपादक के नाम समाचार भेजना, रिपोर्ट तैयार करना, विविध प्रकार के प्रपत्र भरने का ज्ञान प्राप्त करना है । जिससे भाषा शिक्षक को सहायता मिलती है ।

मुक्तरचना

इसमें अध्यापक को भाषा सम्बन्धी नियमों का पालन करते हुए स्वेच्छा से शब्दों का चयन कर संयोजित करने की स्वतन्त्रता होती है । उच्च कक्षाओं में शिक्षण हेतु अध्यापक को रूपरेखा विधि, तर्क अथवा परिचर्चा विधि, आदर्श अनुकरण एवं स्वाध्याय विधि का सहारा लेना चाहिए ।

लेखक कौशल के विकास हेतु अध्यापक को लिखावट, लिपि प्रतीक, शिरोरेखा, कलम पकड़ने की विधि, बाये से दाये लिखना, अक्षर सुडौल, बैठने का ढंग आदि का ध्यान रखना चाहिए। जब अध्यापक भाषा कौशल में निपुण होगा तो उसका भाषा शिक्षण बहुत ही अनूठा होगा। इस तकनीकी युग में अध्यापक को समय के साथ रहते हुए अपने भाषा सम्बन्धी कौशलों का विकास करना आवश्यक है ।

अध्यापक का सम्पूर्ण अध्यापन भाषाधीन होता है । प्रभावी अध्यापन हेतु अध्यापक में भाषा का समग्र ज्ञान एवं भाषा कौशलों का होना नितांत अपरिहार्य है । छात्र अध्यापक को अपना आदर्श मानता है, अतः अध्यापक को अपने सफल विषय संप्रेषण हेतु एवं छात्रों में अधिगम प्राप्ति हेतु भाषा पर अधिकार एवं भाषा कौशलों में निपुणता संपादित करना चाहिए ।

सन्दर्भ

1. डॉ. शिखा चतुर्वेदी, हिन्दी शिक्षण, 2011, पृ.72
2. डॉ. उमा मंगल, हिन्दी शिक्षण, 1996, पृ. 41
3. डॉ. उमा मंगल, हिन्दी शिक्षण, 1996, पृ. 45
4. डॉ. बीना शर्मा (सं.) भाषा शिक्षण विधियाँ 2008, पृ.22
5. हिन्दी शिक्षण, डॉ. ममता पारीक
6. हिन्दी मातृभाषा शिक्षण, डॉ. हेतसिंह बघेला

संविदाध्यापिका, आधुनिक विभाग - हिन्दी
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

Role of Teleconferencing in Globalizing Teacher Education

✍Dr. Shweta Sood

Change is the key element for the twenty first century that poses many challenges and enormous pressure on our daily life, work and society. Political, economic, social, and technological environments are changing significantlyand rapidly. Information and Communication Technology (ICT) has transformed all the aspects of education, which is a rapidly growing segment. The advent of the Internet as a means of information access and distribution, and the explosive growth of the World Wide Web have transformed teaching from a broadcast mode to an interactive one. Distance Education has been moving very fast from correspondence education to online education or web-based delivery of education. New types of educational technologies are emerging at an ever accelerating pace. It has widened the scope by including online education, online courses, virtual courses, and virtual library etc. Learninghas become more self-directed, more resource-based, collaborative, intertwined with personal life and work, and calls for perpetual access, usage of information and learning resources. Learning has shifted from *knowing what*to *knowing ho*w; how to learn, how to secure information, how to use it, and how to relate it to the ever changing society. The new emphasis is on access and usage. Faculty and librarians are all at the crossroads and being constantly pressured to increase their productivity and to change instructional strategies to accommodate changes and educational reforms. There is a need for adopting a new vision which could meet the challenges of changing Education environment.

Globalization is a universal lexicon today. It is a chief ideology of the present era since it is more potent and pervasive than any other. Its reach is global and universal. It is a process by which the experience of everyday life, marked by dissemination of ideas and commodities is becoming standardised around the world. Its activities increase from a local, regional and national levels to a global or international level. Trade &Commerce, Technology, Science, Information Knowledge and Culture are the major constituents of globalization. Its aim is connecting closeness, togetherness and interdependency. Globalization magnifies the economic activities of a country across national boundaries. Its essence lies in integrating world with a single order.

The current trend of globalisation is one that is having a marked impact on society and the area of education in particular is feeling the impact. In a normal classroom situation, teacher's lecture is followed by discussion by the students. In this case, the teacher has to assume the role of a cognitive and meta-cognitive coach, rather than knowledge holder and disseminator, and the students have to assume the role of active problem solvers rather than passive learners as information is a shared aim of teaching and learning process. The dramatic changes that are taking place as a result of globalisation means that the demand for education is increasing significantly.

There is a growing recognition of not only the need for skills development but also reskilling and a requirement for lifelong learning. In the current evolving education and work markets, there is a need for both staff and students to be involved in lifelong learning process to acquire and develop broad range of skills.

An innovative attempt was made by the UGCon 15th August 1984 to reach the undergraduate students in semi urban and rural areas. The objective of these programmes was to enrich the quality of education by opening a window to the world, but the one main drawback of these programmes was realised that the viewers can't communicate back to the teacher in an interactive mode and get answer to their queries as they can't question to the T.V. teacher. So the outcome of such dilemma led to theadvent of teleconference.

Teleconferencing is a new mixed model approach for Distance Education combining satellite teleconferencing with hands-onactivity session. It was developed to adjust for many of the disadvantages associated with Distance Education and traditional in-persontraining. It brings together a community of learners for interactive education anywhere, any time and any place. This uses live teleconference speakers, video clips, interactive call-in sessions andlocal session.Distance education is responsible for promoting quality information, resources and expertise. The early Distance educationsystems relied primarily on printed materials for instruction. Correspondence courses have been the most common delivery method of course materials to distant students. People may be geographically isolated because of distance, terrain, or undevelopedcommunication systems. There arethree main reasons for disseminating education to all societies: geographical isolation, social isolationand disadvantaged groups. Distance teaching techniques enable people to undertake a course of study inprivacy. The Web, whencombined with other network tools such aslistservs, Usenet newsgroups and video teleconferencing acts a virtual classroom to bring together acommunity of learners for interactive education. The growth of television, telecommunication, videotape,audio teleconferencing, audio graphics conferencing and videoconferencing permits linking thelearners and the instructors who are geographically separated. Teleconferencing is a unique method of providing real time face-to-face interaction that enables immediate peer and teacher interaction and the feedback. This interaction can minimise feelings of isolation and provide for a richer learning experience for students and staff at geographically separated sites.

Teleconferencing technologies are powerful tools for dispensing education and play a major role in the creation of new teaching and learning environments that are becoming increasingly common through the use of flexible delivery options. The use of new technologies in developing alternative teaching and learning environments provides many challenges to both teachers and learners. The development of effective

teaching and learning environments using media such as videoconferencing rely more on student centred approaches to learning. Teleconferencing overcomes the "access to the expert" gap by providing opportunities for face-to face-interaction on a regular basis. This provides a wealth of opportunities for both professional development for the staff and skills development for the students complementary to their knowledge acquisition. The staff is able to explore the most effective means of using videoconferencing technology to achieve positive learning outcomes. The experience of using technology enables the staff to develop a sound understanding of ways in which the technology could be best utilised which results in moving away from a didactic teacher centred model to a more interactive student centred model. The group work approach encourages the sharing of knowledge and peer support in a productive, positive environment. This approach also encourages the development of both critical thinking and problem solving skills as well as encourages learners towards more independent learning strategies. It is believed that there needs to be a more pronounced shift to a learner centred model of teaching and learning with students developing skills and confidence to share ideas, challenge opinions, and propose solutions in a positive and supportive environment. This approach also highlights the need for student development for new teaching and learning environments. It is felt that more extensive student awareness and preparation programs will not only form an essential part of future developments using teleconferencing technologies but also provide skills for students to become independent learners.

Teleconferencing has become an essential tool in maintaining course offerings to multi-campus institutions or for dispersed groups of students; and has the potential to promote more interactive and effective teaching and learning process. The following are the main advantages of Teleconferencing**:**

- Training programmes can be easily organised through teleconferencing.
- The satellite based technology of teleconferencing makes it possible totrain all the teachers simultaneously which is a massive task as they are not only large in numbers but also scattered throughout the country.
- Theparticipants actively and reasonably ask questions. It improves participants' keen observations, sharp thinking and further improves their listening comprehension and speaking skills.
- Low cost of communication compared to travel and other costs.
- Uniform instructions.
- Easy scheduling of group discussions and conferencing by telephones.
- Immediate feedback from all the concerned.
- Quick remedial actions.

The use of innovative teaching methods helpsto sustain student's interest and make the learning process more productive and interesting.The techniques that can be adopted are: computer-assisted learning (CD-ROMs), web-based learning,virtual laboratories, case studies, group discussion, brainstorming, audio-visual presentation,assignments, seminars, quiz and assigning project works. The faculty can also prepare worksheets, manualsand audio-visual aids to supplement these noble teaching strategies. Students can be given two types oflearning materials before their actual course material, viz. one on computer literacy class and the other onefocusing on Internet and Web skills for searching, retrieving, locating and downloading theinformation. For better understanding by the students, the mixed-model approach of combining satelliteteleconferencing with hands-on activity sessions can also be conducted. It is suggested that innovativeassessment approaches like presentation, posters about learned material, diagrams, student displays andproject fairs with test papers can be used to know the progress of the students. It has been observed that problem-based learning helps the students in activelysolving the problem and enables them to confrontsuccessfully with a real-world situation.

To conclude, there has been a paradigm shift in the field of education all over the world as a result of which awakening has come in theteaching-learning process. The onus is now on the learner, and the teacher is looked upon as a facilitator.Understanding that the traditional chalk and talk method can no longer enthuse the students, a continuous attempt is made to introduce innovate methods that will sustain their interest and make the learning process moreproductive and interesting. Innovative teaching can take many forms. Educators must learn to change with the timesand adopt the methods offered for instructing students. These changes will ultimately benefit the students as well as theeducation system. The ability to adapt to these changes is one of the most important attributes for today'seducators. Thus, Teleconferencing is more beneficial to teachers in that there is more scope for learning through multiple varieties such as self-showing interactions and demonstrations with immediate response to question and group work. It is useful in disseminating the skills from a distance. New technologies in education are used primarily for individualization, no doubt, that this particular technology which is comparatively less expensive will reach out the massive teaching folk of the country, if only it is put into use at the right time and in the right manners.

Works Cited

Prasad, G., and A.M. Dutta.*Globalization: Myth and Reality.* New Delhi: Concept, 2004. Print.

Sharma, R.A.*Fundamentals of Educational Technology*. Meerut: R. Lall Book Depot, 1994. Print.
Van Horn, R.*Advanced Technology in Education.* California: Books Cole, 1991. Print.
Verma,R. and J.K. Sharma.*Modern Trends in Teaching Technology.*New Delhi: Anmol, 1998. Print.

Contract Teacher, Modern Dept., English
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

संस्कृत साहित्य का हिंदी नाटकों पर प्रभाव : एक अनुशीलन

✍डॉ. दिनेश पाठक

संस्कृत साहित्य की एक अत्यंत समृद्ध परंपरा है । आर्यकुल की लगभग सभी भारतीय भाषायें संस्कृत से भाषा व भाव दोनों स्तरों पर प्रभावित है । हिन्दी पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव पडा है । चूंकि संस्कृत साहित्य का श्रव्य व दृश्य दोनों काव्य अत्यंत विकसित था अत: दोनो का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पडा । हिन्दी साहित्य की पद्य परंपरा पर संस्कृत साहित्य की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है । ठीक इसी तरह हिन्दी का नाट्य साहित्य भी संस्कृत साहित्य से भाव व शिल्प दोनों स्तरों पर प्रभावित है ।

हिन्दी नाटकों का उद्‌भव भारतेन्दुकाल से माना जाता है । किन्तु यदि हिन्दी नाटकों की परंपरा को देखें तो भारतेन्दुकाल से पूर्व भी हिन्दी नाटकों की एक विरल परंपरा मिलती है, जैसे प्राणचन्द्र चौहान द्वारा रचा गया 'रामायण महानाटक' (ई.1610) लच्छिराम कृत 'करुणाभरण' (ई. 1657) नेवाज कृत 'शकुन्तला' (ई.1680) महाराज विश्वनाथ कृत 'आनन्द रघुनन्दन' (ई.1700 के आस-पास) रघुराय नागर कृत 'सभासार' (ई.1700) उदय कृत 'राम करुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' (ई.1840) का उल्लेख हमें मिलता है । यद्यपि इन नाटकों को विद्वान पूर्ण अर्थो में नाटक नहीं मानते, उनकी दृष्टि में ये कृतियाँ नाटक न होकर पद्यात्मक प्रबन्ध हं । इन नाटकों में 'आनन्द रघुनन्दन' को ही कुछ अर्थों में विद्वान नाटक मानते हैं । क्योंकि उसमें संस्कृत नाट्य शास्त्र के कुछ शास्त्रीय नियमों का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार के प्रयोग आगे भी होते रहे, भारतेन्दुयुगीन शैशव अवस्था से आगे बढते हुए जब हिन्दो नाटक प्रसाद युग में पहुँचता है तो संस्कृत साहित्य का घना प्रभाव उस पर दिखाई पडने लगता है । यह प्रभाव प्रसाद के नाटकों पर ज्यादा व्यापक रूप से दिखाई पडता है । प्रसाद जी के लगभग सभी नाटक किन्हीं न किन्हीं रुपों में संस्कृत साहित्य से प्रभावित दिखाई पडते हैं । विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटक अपने कथ्य व शिल्प के धरातल पर संस्कृत साहित्य से प्रभावित है । प्रसाद जी के नाटकों में चित्रित राष्ट्रबोध, सांस्कृतिक मल्य, भाषा का नितांत उन्नत व संस्कृत निष्ठ रूप सभी कुछ संस्कृत साहित्य से प्रभावित है । प्रसाद के नाटकों के अनेक महत्वपूर्ण चरित्र जैसे गौतम बुद्ध, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी इत्यादि के निर्माण में संस्कृत

साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है । प्रसाद के बाद भी संस्कृत साहित्य से प्रभावित होकर अनेक नाटकाकारों ने हिन्दी में नाटकों का प्रणयन किया । इस क्रम में एक महत्त्वपूर्ण नाम जगदीशचन्द्र माथुर का है । उनके नाटकों में 'पहला राजा', 'कोणार्क' और 'शारदीया' पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । 'पहला राजा' मिथक, इतिहास व कल्पना के योग से बना नाटक है । इस नाटक में नाटककार ने आदि राजा मनु की कथा को उपजीव्य बनाया है । इस नाटक के कथासूत्र वैदिक और पौराणिक साहित्य से लिए गए हैं । नाटक के मिथक का प्रयोग नाटककार आधुनिक जीवन व सत्ता के संघर्षों को उभारने के लिए करता ह । इस नाटक में आदिम समाजव्यवस्था से जुडे राजा पृथु की कहानी है । नाटक की कथा के सूत्र एक तरफ वैदिक सभ्यता से तो दूसरी तरफ महाभारतकालीन संस्कृति से जुड़े हैं । इस नाटक में संस्कृत नाटकों की तरह गीति-शैली का भी प्रयोग मिलता है । इसे संस्कृत साहित्य के स्पष्ट प्रभाव की तरह देखा जा सकता है ।

जगदीशचन्द्र माथुर का एक और महत्त्वपूर्ण नाटक है 'कोणार्क' । 'कोणार्क' मूलतः एक ऐतिहासिक नाटक है । इसकी कथा इतिहास के सन्दर्भों व जनश्रुतियों के सूत्रों से बुनी गई है । तीन अंकों वाले इन नाटक में संस्कृत के 'सूत्रधार' परम्परा का अनुकरण किया गया है । संस्कृत नाटकों की परम्परा का अनुगमन करते हुए नाटककार ने उपसंहार में उनका प्रयोग किया है । नाटककार ने विष्कंभक के समान उपकथनों का भी प्रयोग संस्कृत नाट्य परम्परा से प्रभावित होकर ही किया है । नाटक की चेतना अपने युग के सत्य को उजागर करती है । नाटककार नाटक के सन्देश पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ नहीं बना सकता।'[1] विशु के माध्यम से नाटककार कलाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता को एक बार फिर हमारे सामने लाने की कोशिश करता है । इस नाटक के चरित्र यथा नरसिंह देव, महामात्य, राजराजाचालुक्य, धर्मपद तथा शिल्पी विशु के चरित्र निर्माण पर भी संस्कृत नाटय परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

जगदीशचन्द्र माथुर का एक अन्य नाटक 'शारदीया' भी इसी क्रम में आता है । शारदीया उन्नीसवीं सदी के मराठा इतिहास का चित्रण करता है । किन्तु इतिहास या ऐतिहासिकता का चित्रण करना नाटक का उद्देश्य नहीं है । मूलतः नाटककार इस नाटक के माध्यम से कलाकार व उसके परिवेश के संघर्षों को उकेरना चाहता है । इस नाटक के शिल्प व इसकी तकनीकी पर संस्कृत संस्कृत साहित्य विशेषतः नाट्य साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है । संस्कृत नाटकों की

तरह इसमें भी दो दृश्यबंधतथा तीन अंक हैं । संस्कृत नाटकों के काव्यत्मकता का अनुकरण भी इसमें किया गया है। दृश्य-योजना, साजसज्जा, नृत्यसंगीत, पात्रों की भाषा इत्यादि पर संस्कृत नाट्य साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

धर्मवीर भारती के गीतिनाटय 'अंधायुग' को भी इसी क्रम में देखा जा सकता है । महाभारत के युद्ध की समाप्ति के साथ इसकी कथा प्रारम्भ होती है और कथा के विकास में दृश्य परिवर्तन को आधार बनाया जाता है । इसके अंकों के नामकरण का आधार भी यही है । 'कौरवनगरी', 'पशु का उदय', 'अश्वत्थामा का अर्धसत्य', 'गान्धारी का श्राप', 'विजय' और 'एक क्रमिक आत्महत्या' जैसे - शीर्षकों का नाम नाटिका के विभिन्न अंकों को दिया गया है । इस गीति नाट्य के कथ्य, पात्र व पात्रों के चरित्र-चित्रण पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है ।

मोहनराकेश के दो अत्यन्त चर्चित नाटकों - 'आषाढ़ का एक दिन' व 'लहरों का राजहंस' पर भी संस्कृत साहित्य के स्पष्ट प्रभाव को देखा जा सकता है । 'आषाढ़ का एक दिन' मूलतः कालिदास और मल्लिका के प्रणय का नाट्य चित्रण है । नाटक की कथा गुप्तवंश से जुड़ी है । इसके सभी पात्र यथा - कालिदास, प्रियांगुमंजरी, मल्लिका, विलोम इत्यादि ऐतिहासिक पात्र हैं । इस नाटक के चरित्रों के विकास पर कालिदास के संस्कृत साहित्य का पर्याप्त प्रभाव है । चरित्रों के साथ-साथ चरित्रों का मानसिक द्वन्द्व भो संस्कृत साहित्य से प्रभावित है ।

मोहनराकेश का दूसरा महत्त्वपूर्ण नाटक है 'लहरों के राजहंस' । यह नाटक अश्वघोष के चर्चित काव्य 'सौन्दरानंद' पर आधारित है । नन्द व सुन्दरी तथा गौतम बुद्ध व यशोधरा जैसे पात्र हैं। इन पात्रों के माध्यम से नाटककार ने समकालीन जीवन के विविध प्रश्नों जैसे भोग व त्याग, पार्थिव-अपार्थिव, लालसा व संयम पर विचार किया है ।एक तरफ नन्द और सुन्दरी के माध्यम से नाटककार निरन्तर भोग में डूबे रहने वाले, विखण्डित मानसिकता वाले व्यक्ति का चित्रण करता है तो वहीं बुद्ध और यशोधरा के माध्यम से वह भोग से त्याग, लालसा से वैराग्य की मात्रा का चित्र खींचता है । इस नाटक के पात्र, भाषासंवाद, पृष्ठभूमि तथा कथा के विकास पर सौन्दरानन्द का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । नाटक के अनेक प्रसंगों, विशेषकर 'काम-उत्सव' जैसे उत्सवों का आयोजन, राजपुरुषों द्वारा उसका बहिष्कार, बौद्ध भिक्षुओं का जीवन व उनका अध्यात्म चिन्तन इत्यादि पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है ।

शंकर शेष का महत्त्वपूर्ण नाटक 'खजुराहों का शिल्पी' भी अपने कथ्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य से प्रभावित है । इस क्रम में हिन्दी के अन्य दो नाटकों को भी देखा जा सकता है। ये दो नाटक हैं, सुरेन्द्र वर्मा कृत 'आठवाँ - सर्ग' और 'सूर्य की अन्तिम की किरण से सूर्य की

पहली किरण तक' । नाटक 'आठवाँ सर्ग' की कथा कालिदास के जीवन पर आधारित है । इस नाटक का भी परिवेश गुप्त वंशकालीन है । इस नाटक में कलाकार के अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य और इसक्रम में सत्ता से होने वाले उसके सन्घर्षों का वर्णन किया गया है । यह मानने में हमें जरासा भी संकोच करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि, इस नाटक की मूल कथावस्त् संस्कृत साहित्य से ली गई ह । विशेष रूप से शिव-पार्वती के कामक्रीडा के चित्रण पर कुमारसम्भव के आठवें सर्ग का प्रभाव स्पष्ट रूप परिलक्षित होता है ।

सुरेन्द्र वर्मा का दूसरा महत्त्वपूर्ण नाटक, 'सूर्य की अन्तिम किरण से लेकर सूर्य की पहली किरण तक' पर भी संस्कृत साहित्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है । एक तरफ जहाँ इस नाटक में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नई व्याख्या प्रस्तुत की गई है । वहीं दूसरी तरफ यह नाटक भाषा व शिल्प नाट्य तकनीकी को लेकर भी एक नए प्रस्थान बिन्दु का निर्माण करता है । यह नाटक अपनी दृश्यगत बनावट और भाषागत शिल्प को लेकर संस्कृत साहित्य से निकट से प्रभावित है । कुछ अंशों में वात्स्यायन के सौन्दर्य व कामदर्शन का भी प्रभाव इसपर देखा जा सकता है । नाटक की दो प्रमुख पात्र ओक्काक व शीलवती स्त्री-पुरुष के बीच के काम सम्बन्धों को एक नवीन दृष्टिकोन से परिभाषित करती हुई एक नवीन कामदर्शन को जन्म देती हैं ।

नाटक अपने भाविक बुनावट व पात्रों के विकास के स्तर पर संस्कृत साहित्य का ऋणो है। नाटक के पात्र जैसे ओक्काक, आचार्य प्रतोष, शीलवती, महामात्य, महाबलाधिकृत इत्यादि के चरित्र के संयोजन पर संस्कृत साहित्य का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य की अतिसंपन्न भाविक व सांस्कृतिक परंपरा का हिन्दी नाट्य साहित्य के लेखन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि संस्कृत की सुसंपन्न नाट्य परंपरा को ध्यान में रखकर ही नाट्यशास्त्रकार ने कहा होगा-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला
न तत्कर्म न योगोऽसौ नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ।[३]

अर्थात ऐसा न कोई ज्ञान है, न कोई शिल्प है, न कोई विद्या है, न कोई कला है, न कोई कर्म है और न कोई योग है, जो इस नाट्य में न हो । स्पष्ट ही है कि संस्कृत नाट्य साहित्य व समग्रत: संस्कृत साहित्य की अति संपन्न परंपरा हिन्दी के ही नहीं बल्कि विश्व के साहित्य को प्रभावित करने की शक्ति रखती है । लोक धर्म व नाट्य धर्म का पूर्ण रुप से पालन करनेवाली यह परंपरा हिन्दी साहित्य का संबल है ।

मूल व संदर्भग्रन्थसूची

1. कोणार्क - लेखक जगदीशचन्द्र माथुर
2. नाट्यशास्त्र - आचार्य भरतमुनि
3. शारदीया - जगदीशचन्द्र माथुर
4. पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर
5. अंधायुग - धर्मवीर भारती
6. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश
7. लहरों का राजहंस - मोहन राकेश
8. खजुराहों का शिल्पी - शंकर शेष

अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
एस. आइ .ई. इस. कला, विज्ञान व
वाणिज्य महाविद्यालय,
सायन (प.)
मुम्बई-४०० ०२२

❖❖❖

EMPOWERMENT OF WOMEN AND THE ROLE OF PUBLIC POLICY

✍Dr. Suman Singh

Man and woman are like two wings of bird, which only in unison can take a lofty flight. Unfortunately for our society, one of these wings is wounded and weak. Women, who is the mother, carrier and procreator of all human stands defeated, humiliated and over-powered by her own creation-the man proving true the philosophical formulation of the giant of the social scientists- Karl Marx that every matter contains the seed of its own destruction. If the society goes on denying the rights to its procreator woman, it wouldn't take too long to destroy the race 'woman' from face of the Earth. Although, gender injustices is a global phenomenon, unfortunately eastern countries especially India has surpassed many others in this regard. Though, very interestingly, both in western and oriental thought, the pages of History are repleted with various names presenting a golden picture of women in different phases of History. To illustrate, Sita, Damyanti, Savitri, Kunti, Draupadi,Gargi, Maitreyi, Laxmibai, Chand bibi, Sarojini Naidu, Indira Gandhi, Kiran Bedi, Kalpana Chawla, Medha Patkar,Vandana Shiva etc. But this presents only one side of the story, shedding light on the half truth. The other side presents a very gloomy picture relegating the notion that 'The present century belongs to women' to the dust.

Genesis of Problem:

A chill runs down our spine when cases of a number of callous and inhuman practices prevailing in several countries impinging on females flashed nearly everyday in newspapers, or channels. Instances of female infanticide, foeticide, sex-abuse, sex-tourism, molestation, domestic-violence, immoral trafficking, dowry, bride-burning are enough to set whirlpools of fear in our blood. All this compels us to turn our eyes and ears to Lamartine words that there is a woman at the beginning of all great things. Then the question is- why the worse is inflicted to the initiator of greatest things?

Demure, diffident, soft, sensitive-these words have epitomised feminity since time immemorial. A woman is a sacrifice personified. This creation of misconception about women's fragility, delicacy, and feminine charm has been furthered by poetry, literature and sculpture. Secondly, our society has been mired in tradition for so long that we have internalised values which have time and again led to the suffering of women. The social, economic, legal and political institutions have at different levels furthered patriarchy which is interwoven into warp and woof of our cultural fabric. The fictitious differences between 'he' and 'she' have belittled and disparaged women folk in India regardless of their religion, caste or creed. All this has annihilated her

identity as a free individual. Thirdly, by targeting women as the centre of consumeristic society reducing her as commodities to be traced in the international markets both overtly and covertly leaving no space from the commercialization of women's charm and vulnerability. The day women understand this, it will definitely change the contours of the world economics that day. Thus, with all pretensions to morality and piety, we treat the female species as no more than a commodity. The question is "Does she have any honourable place in the society?" A capital 'No' is the answer.

And finally, the mot unfortunate reality is the inherent hatred of women towards women. The genesis dates back to the civilizational history, women lost trust in their own kind, after having undergone the same physical, mental torture and degradation when they were young and vulnerable. Their experience taught them to confine their progenies and young ones to home and house chores, gradually resulting into the custom of indoor responsibility, falling into women's care and outdoor for men. In course of time, reproduction, domestic-work and child-rearing became the exclusive responsibility of women. All these three activities are so time-consuming and engaging that it leaves them no time and space for education and self-development.

Development of Feminist Movement:

With the ushering of democracy, all round development of the society was given the topmost priority in the West, creating space for women to question their fundamental rights for liberty, equality and freedom. Women like Mary Wollstonecraft, Simone de Beauvoir, Madam Mary Curie, Florence Nightingale were among the first to set the ball rolling for greater participation of women in all walks of life. Consequently, women per se gained movement during 70s which culminated into feminist movement in 1975. The material prosperity which generated from capitalism was instrumental in orienting women to question their stakes in the prosperity of their society and economy paving the way for socialistic reforms in the European societies from back doors making capitalism more human and acceptable system. Subsequently, women were declared equal to men in intelligence, skill and competence; hence equality in wages, opportunities, status (social, economic and political) became the watch words of the feminist movement. It led to the emergence of the concept of 'Empowerment of Women'.

Concept of Women's Empowerment:

The concept of empowerment of women is of recent origin. It has been given currency by U.N. agencies during recent years. 'Empower' means to make one powerful or equip one with the power to face the challenge of life to overcome the disabilities, handicaps and inequalities. It is an active multi- dimensional process which would enable women to realise their full identity and powers in all spheres of

life. It would consist in providing greater access to knowledge and resources, greater autonomy in decision-making, greater ability to plan their lives, greater control over the circumstances that influence their lives and freedom from the shackles imposed on them by custom, belief and practice.

Empowerment does not mean setting women against men. Indeed, it means making both men and women realise their changing roles and status and develop a consensus for harmonious living in the context of an egalitarian society. It means redistribution of work roles, re-orienting their values to the changing world and attitudes and evolving new kinds of adjustments, understanding and trust with each other. It is a new ideology for carrying democratic values into the family and society. It demands a basic change in the social system. The philosophy of women's empowerment needs a total rehauling of the Indian society.

Strategies of Women's Empowerment:

Empowerment of women can be achieved by focussing on the following strategies:

The emergence of understanding that the full participation of women in every sphere is inevitable for the society to bloom to fullest. It must be internalized that causing women's participation and empowerment is not an alm being doled out by the men; rather it is their only solace to grow, mature and realize their own potentialities.

Based on this fundamental, multi- faceted actions need to be initiated at all levels towards women empowerment. One vital dimension of this is women's economic independence. Economically self reliant woman act as a self- generating dynamo fostering the goals of family planning and self- development. For this skill development programmes, entrepreneurial development programmes and micro-finance schemes need to be implemented sincerely, up till the remotest corners of the country. Granting land rights to women, in policy as well as practice, would be another crucial step. All these have the ability to totally transform the values, psyche and economy of our entire society. It could take to great heights the benefits already being reaped by causing women's participation in Panchayati Raj institutions.

Another important dimension of women's empowerment is their health. This neglect of women's health has continued in spite of it's overarching influence on the health of the entire family. Increasing number of women falling victims to HIV/AIDS, mostly passed on by their unfaithful husbands, besides female foeticide continuing full blown, despite all prohibitions on PNDT (Pre- Natal Diagnostic Test) present a horrifying reality. If these continue a little while, all doors would be slammed upon any possibility of deliverance of the humanity. Sufficient number of trained health professionals and NGO's need to come up to take charge of even the remotest of villages to pull the women out of their ignorance, inhibitions and diseases.

Above all, the key to achieving high standards in women's empowerment lies in women's education. Women need to be made aware of their rights and duties by incorporating these in formal and non- formal education system, imparted free and compulsory. Mobilisation of grass-root women is the only tool to empower women as a whole. Though a lot has been done, yet we have to go a long way to make women's empowerment a living reality. It is the strong and effective people's campaign and people's movement, which is urgently needed to take place along with the other movements already in operation to bring about real empowerment of women. The urgent need of the hour is a revolution in thinking and an awakening of the collective consciousness of people. In the final analysis, women's empowerment can be achieved only with the change of heart, attitude and behaviour of people.

Conclusion:

The ultimate truth is that each of us has both a man and a woman in us. When we neglect and disrespect the women around, we unconsciously do the same with the feminine attributes within ourselves- attributes as love, compassion, kindness, care and empathy. We must know that for our infiniteness to blossom, both of these aspects should manifest themselves to the fullest. Only then we can reach to the divinity within and without. Only then, we can realize the dream of a world full of love, peace and happiness.

References:

1. Bryson,V.,Feminist Political theory: An Introduction, 2nd edn, Basingstoke and New York: Palgrave Macmillan, 2003.
2. Squires, J., Gender in Political Theory, Cambridge and Malden, MA: Polity Press, 1999.
3. Freedman, J., Feminism, Buckingham and Philadelphia, PA: Open University Press, 2001.
4. Gandhi,M., Selected Writings of Mahatma Gandhi, ed. R.Duncan, London: Fontana.

Contract Teacher, Modern Dept. - Pol. Sci.
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

LEGAL ACTS RELATED TO SELF DEFENCE

✍Shri Shankar Andhale

In IPC section 76 to Section 106 deals about General exception, lay down 7 important exceptions, as under:

1. Mistake of Fact
2. Judicial acts
3. Accident
4. Absence of criminal intention
5. Act done by consent
6. Trifling act
7. Right of private Defence.

U/s 105 of Indian Evidence Act, if any person desires to avail of these 7 exception, he must prove that his case fall within any of these 7 exception in other words, the burden of proving that his case falls within one of the exceptions lies on him. The prosecution has to prove the guilt of the accused .The accused is not required to prove his innocence. But if he relies on any one of these exception. The Court will presume the absence of these circumstances which bring the case within the general exception.

EG: "A", accused of murder, alleges that by reason of unsoundness of mind, he did not know the nature of the act. The burden of proof is on "A".

These 7 exception are discussed below in detail:

1) MISTAKE OF FACT- (SECTION 76)

Section **- 76 Act done by a person bound, or by mistake of fact believing himself bound, by law.** It is some time good defence. It must mistake of fact not mistake of law- nothing is an offence which is done by a person who is, who by reason of a mistake of fact and not by reason of a mistake of law in good faith believes himself to be, bound by law to do it.

EG: -A soldier, fires on a mob by the order of his superior officer, in conformity with the commands of the law. A has committed no offence.

MISTAKE OF LAW- It is to be remember that mistake of Law is no defence,but mistake of Fact is. Everybody is bound to know the law of Land, and ignorance of Law is no excuse. This is based on assumption that if a person Exercises due care and diligence, he would know the law.

2) JUDICIAL ACT- (SECTION 77 & 78)

The 2nd general exception relates to act of judge and courts-

Any act done by a judge while acting judicially is no offence. Thus, a judge who sentences a prisoner to death even wrong is not himself liable to be punished for having caused somebody's death. There is no offence.

Act done by a person justified, or by mistake of fact believing himself justified, by law. (Section 79)

Nothing is an offencewhich is done by any person who is justified by law, or who by reason of a mistake of fact and not by reason of a mistake of law in good faith, believing himself to be justified by law, in doing it.

3) ACCIDENT-

This 3rd exception relates to act committed to accident-

A. Without criminal intention or knowledge
B. in the doing lawful act, in a lawful manner, by lawful mean & proper due caution

Nothing is an offencewhich is done by accident or misfortune, and without any criminal intention or knowledge in the doing of a lawful act in a lawful manner by lawful means and with proper care and caution.

EG:-A takes up a gun , and without examining whether it is loaded or not , point it in sport at B , and pulls the trigger B dies.

Here B's death is not accidental, as there was want of proper care& caution.

4) ABSENCE OF CRIMINAL INTENT (section 81-94)

This is the 4th exception namely absence of criminal intention, will be consider under 7 sub heads: shortly stated,Doing act forbidden by criminal law without just cause or excuse. Now, there are certain acts which appear to be criminal, but are done without any criminal intent.

These are as under:

Act done to avoid other harm- An act done with the knowledge that it is likely to cause harm, but done good faith, and without any criminal intent to cause harm, for the purpose of prevent or avoiding other harm to person or property is not an offence.

EG: "A" in a great fire, pulls done houses in order to prevent them from spreading. He does this in good faith of saving human life.

ACT of the child (Section 82 & 83)-

In criminal law children are given protection,under certain circumstances. For acts committed by them.

Which can be analysed:

Section -82 Act of a child under seven years of age- Nothing is an offencewhich is done by a child under seven years of age.

It is to be noted that the immunity of children under 7 of year of age from criminal liability is not confined to offences under code only .But extend to offences under any special or local law.

EG:A child of 9 years of age stolen a gold necklace, and sold it to “B” for half rupee only. Here the child is guilty of offence.

Section-83 Act of a child above seven and under twelve of immature understanding.Nothing is an offencewhich is done by a child above 7 years of age and under 12, who has not attained sufficient maturity of understanding to judge of the nature and consequences of his conduct on that occasion.

Section-84 Act of a person of unsound mind. Criminal Law gives complete protection to an insane person. It provided that nothing is an offencewhich is done by a person who, at the time of doing it, by of unsoundness of mind , is in capable of knowing the nature of the act ,or that he is doing what is either wrong or contrary to law.

Section-85 Act of an intoxicated person.Nothing is an offencewhich is done by a person who, at the time of doing it is by reason of intoxication, incapable of knowing the nature of the act,or that he is doing what is either wrong, or contrary to law, provided that the thing which intoxicated him was administered to him without his knowledge or against his will.

Bona fide act for another’s benefit- (Section 92)

Act done in good faith for benefit of a person without consent.Nothing is an offence which is done by reason of any harm which it may cause to a person for whose benefit it is done in good faith, even without that person’s consent, if the circumstances are such that it is impossible for that person to signify consent, or other person in lawful charge of him from whom.

EG: - “A” a surgeon,sees a child suffer an accident which is likely to prove fatal, unless an operation be immediately performed. There is no time to apply to the child s guardian. “A” committed no offence.

Communication made in good faith (Section 93)

Any communication in good faith to a person is no offence. Even though such communication may cause harm to the person to whom it is made, if it is for benefit of such persons.

EG:-“A” a surgeon in a good faith, communicates to a patient his opinion that he cannot live. The patient dies in consequence of that shock. “A” committed no offence.

Act done under compulsion or threat.

6) TRIFLING ACTS (Section. 95)

The sixth general exception lays down.This section is intended to prevent penalization of wrong or offences.

"Nothing is an offence by reason that –

(i) It causes, or

(ii) Is intended to cause, or any harm,

(iii) Is known to be likely to cause

If that harm is so slight that no person of ordinary sense and temper would complain of such harm.

This section is intended to prevent penalization of wrongs or offences of a trivial character. Whether an act which amounts to an offence is trivial or not would undoubtedly depend upon the nature of the injury, the position of the parties, the knowledge or intention with which the offending act is done and other related circumstances.

The section is intended to cover those cases which though, from the imperfection of language, they fall, within the letter of the Penal Law, are yet not within its spirit and are, therefore, considered to be innocent all over the world.

7) OF THE RIGHT OF PRIVEAT DEFENCE

Self-defence is dynamic concept. It is various from country to country and time to time depending upon the circumstances of each case.

Meaning: Literally speaking of self defence denotes the defending of owns person .But in the Modern time its scope has been widened.

Nature: The right of private defenses is a right and not a privilege, basically it is a natural right.

Section 96: Things done in private defence:Nothing is an offence, which is done in the exercise of the right of private defence.

Section 97: Right of private defence of the body and of property: Every person has a right subject to restriction contained in section 99,to defend-

First:His own body, and the body of any other person. Against any offence affecting the human body.

Second: The property, whether moveable or immoveable, of himself or of any other person, against any act which is an offence falling under the definition of theft, robbery, mischief or criminal trespass. Or which is an attempt to commit theft, robbery, mischief or criminal trespass.

- Right of private defence is not available when there is no criminal trespass with intention to intimidate, insult or annoy any person.

In other words, the right of private defence of the body exist against all attackers – whether with or without 'mens rea'.

E.g.: "A" under influence of madness, attempts to kill "A".

Act against which there is no private defence of body. (99)

- Public servant
- Recourse to the protection of the public authorities.

When such right extends to the causing of death or any other harm to the offender.(Section 100)

- An acts as May reasonable cause the apprehension that death will otherwise be the consequence of such assault. Here he cannot exercise the right without risk of harm to an innocent person, he may run the risk. (Section 106)
- An assault with intention of committing rape
- An assault with intention of gratifying unnatural lust
- An assault with intention of kidnapping or abducting
- An assault with intention of wrongful confining a person

Right when commence & how long it continues (Section 102)

Section provides that the right of self defence commence as soon as a reasonable apprehension of danger of the body arises from an attempt or threat to commit the offence, though the offence may not have been committed and it continues. As long as such apprehension of danger to the body continues.

EG: The 'A' accused killed a weak women found stealing at night. Here right of private defence was not available.

B-RIGHT OF PRIVEAT DEFENCE OF PROPERTY(Section 97-99,101,103&105)

Right of private defence the property (movable/ immovable)

A: Against theft, robbery, mischief or criminal trespass.

B: Against the act of lunatic a minor, or an intoxicated person, or a person acting under a misconception of fact.

EG: - "A" enter s by night a house, which he is legally entitled to enter. "B", in good faith, taking A for a house – breaker attacks "A". "B" were not acting under this misconception.

ACT AGAINST RIGHT OF PRIVEAT DEFENCE OF PROPERTY-

1. There is no right private defence of property against an act which does not reasonable Cause the apprehension of death or grievous hurt if done or attempt to done by government servant acting in good faith under color of his office , though that act may not be strictly justified by law.
2. There is also no right private defence of property in cases in which there is time to have recourse to the protection of the public authorities.

Right when commence & how long it continues (Section 105)

Right when commence & how long it continues a reasonable apprehension of danger to the property commences:

The right continues –

(1) Against theft – till

A) The offender has affected his retreat with the property or

B) The assistance of the public authority is obtained: or

C) The property has been recovered.

(2) Against robbery – as long as

A) The offender cause any person death or hurt or wrong ful restrain or

B) The fear of instant death, or of instant hurt Or of instant hurt or of instant personally restraint continues.

(3) Against criminal trespass or mischief: –

A) As long as the offender continues in the commission of such offence.

(4) Against house breaking by night: -

A) As long as the house breaking continues.

It is to be noted that the right of pvt.defence against house-breaking continues only as long as the house breaking continues .Hence, where a person followed a thief and killed him in an open after house trespass and ceased.

Right extend to causing of death or any other harm to the offender in the following cases only, viz, (Section106)

i) Robbery,

ii) House breaking by night,

iii) Mischief by fire to any building, tent, or vessel, used as human dwelling or as a place for the custody of property.

iv) Theft, mischief,orhousetrespass. Under such circumstances as may reasonably cause an apprehension that death or grievous hurt will be the consequence, if such right of pvt.defence is not exercised.

References

1. Myres S. McDougal and Florentino P. Feliciano (1961). Law and Minimum world public order: The legal regulation of international coercion.
2. Dennis J. Baker, Glanville Williams, (2012). Textbook of Criminal Law
3. Carpenter, Catherine L. (2003). “Of the enemy within, the castle doctrine and self-defense”
4. Fletcher, George P.(2000). Rethinking Criminal Law, Oxford: Oxfoed University Press.ISBN 0-19-513695-0.
5. Segev, Reem. (2005). Fairness, Responsibility and Self-defense. Santa clara law review.

Guest Teacher, Modern Dept. - Phy. Edu.
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

Basics of Computer

✍Miss Vaishali Nivdunge

INTRODUCTION

In this lesson we present an overview of the basic design of a computer system: how the different parts of a computer system are organized and various operations performed to perform a specific task.

OBJECTIVES

After going through this lesson you would be able to:

1. What is mean by computer?
2. Characteristics of Computers.
3. Explain different types of input and output devices.
4. Limitations of Computers.

WHAT IS A COMPUTER?

Computer is a electronic device which can gives input in the form of data and instructions and processes on the input and gives back output as per your user requirements.

Characteristics of computers:

The major characteristics of computer can be classified in to speed, accuracy, diligence, versatility and memory which are as follows:

1) Speed :-

The computer is able to process the date and give the output in fractions of seconds such thatrequired information is given to the user on time enabling the user to take right decisions on right time. A powerful computer is capable of executing about 3 million calculations per second.

2) Accuracy :-

Inspiteof its high speed of processing, the computers accuracy is consistently high enough which avoids any errors. If it all there are errors, they are due to errors in instructions given by the programmer.

3) Reliable :-

The output generated by the computer is very reliable, but it is reliable only when the data, which is passing as input to the computer and the program, which gives instructions are correct and reliable.

4) Storage Capacity :-

The computer has a provision to store large volumes of data in the small storage devices, which have capacity to store huge amounts of data and help the retrieval of data an easy task.

5) Versatile :-

1) It performs basic Arithmetic and Logic operations on data as desired.
2) It is capable to generate the desired output in the desired form.

6) Automation :-

Once the instructions fed into computer it works automatically without any humanintervention until the completion of execution of program until meets logical instructions to terminate the job.

PERIPHERAL DEVICES

Peripheral devices are connected to the computer externally. These devices are used for performing some specific functions.

Peripheral devices are as follows:

A. Input Devices
B. Output Devices
C. Other Peripherals

INPUT DEVICES

Input devices accept data and instructions from the user. Following are the examples of various input devices, which are connected to the computer for this purpose.

1. Keyboard
2. Mouse
3. Light Pen
4. Optical/magnetic Scanner
5. Touch Screen
6. Microphone for voice as input
7. Track Ball

Keyboard

A keyboard is the most common input device. Several kinds of keyboards are available, but they resemble each other with minor variations. The keyboard in most common use is the QWERTY board. Generally standard keyboard has 104 keys.

Mouse

A mouse is an electro-mechanical, hand-held device It is used as a pointer. It can perform functions like selecting menu commands, moving icons, resizing windows, starting programs, and choosing options.

Light pen

An input device that utilizes a light-sensitive detector to select objects on a display screen.Objects with the pen.

Optical Scanner

These devices are used for automatic data collection. The devices of this category completely eliminate manual input of data.

Touch Screen

Touch panel displays and pads are now being offered as alternatives to keyboard. Here the input can be given through the computer screen, that accepts the input through monitor; users touch electronic buttons displayed on the screen or they may use light pen.

Microphone

Microphone is an input device, which takes voice as input. The voice communication is more error-prone than information through keyboard. There are two types of microphones available.

1. Desktop Microphone
2. Hand held Microphone

Track Ball

Trackball, a pointing device, is a mouse lying on its back .To move the pointer, you rotate the ball with your thumb, your fingers, or the palm of your hand. There are usually one to three buttons next to the ball, which you use just like mouse buttons.

OUTPUT DEVICES

Output devices return processed data that is information, back to the user. Some of the commonly used output devices are:

1. Monitor (Visual Display Unit)
2. Printers
3. Plotter
4. Speakers

Monitor

Out of all the output devices, monitor is perhaps the most important output devicebecause people interact with this device most intensively than others. The video adapter converts information from the format used, in he same manner as a television displays information sent to it by a cable service.Two basic types of monitors are used with microcomputers, which are as follows:

1. CRT
2. LCD

Cathode Ray Tube (CRT):

CRT or Cathode Ray Tube Monitor is the typical monitor that you see on a desktop computer. It looks a lot like a television screen, and works the same way.

Liquid Crystal Displays (LCD):

This type of monitors are also known as flat panel monitor. Most of these employ liquid crystal displays (LCDs) to render images. These days LCD monitor are very popular.When people talk about the capabilities of various monitors, one critical statistic is the resolution of the monitor.

Printer

After a document is created on the computer, it can be sent to a printer for a hard copy (printout). Some printers offer special features such as colored and large page formats. Some of the most commonly used printers are:

1. **Laser Printer**
2. **Ink Jet Printer**
3. **Dot Matrix Printer**
4. **Line Printer**

Laser Printer:

A laser printer produces high quality print that one normally finds in publishing. It is extremely fast and quiet.

Ink-Jet Printer:

An ink-jet printer creates an image directly on paper by spraying ink through as many as 64 tiny nozzles.

Dot Matrix Printer:

The dot matrix printer was very popular at one point of time. It is a very versatile and inexpensive output device.

Line Printer:

A line printer is generally used with large computer systems to produce text based data processing reports. Line printers are high-speed printers with speeds ranging anywhere from 100 to about 3800 lines per minute.

Plotter

A plotter is a special kind of output device that, like a printer, produces images on paper, but does so in a different way. Plotters draw curves by creating a sequence of very short straight lines. Plotters usually come in two designs:

1. **Flat Bed:** Plotters of small size to be kept on table with restriction of paper size.
2. **Drum:** These plotters are of big size using rolls of paper of unlimited length.

Speaker

Speakers are another type of output device, which allow you to listen to voice like music, and conversation with people.

Limitation of Computer:

1) Computer does not work on itself, it requires set of instructions to be provided, and else computer (Hardware) is waste.
2) Computer are not intelligent, they have to be instructed about each and every step which they have to perform
3) Computers cannot take decisions on its own, one has to program the computer to take an action if some conditional prevail.
4) Computers, unlike humans cannot learn by experience.

References:-
1) Fundamental of computers
2) www.wikipedia.com
3) www.google.com

Guest Teacher, Modern Dept. – Comp. Sci.
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

मराठी भाषेचे अंतरंग

✍डॉ. मीनाक्षी ब-हाटे

भाषा ही माणसाला निसर्गत: प्राप्त एक दैवी देणगी आहे. ज्या भोवतालच्या वातावरणामध्ये मनुष्य लहानाचा मोठा होतो. त्या भाषेचा परिणाम त्यांच्या मनावर पडतो. त्याला आपण भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोनातून 'भाषिक क्षमता' असे म्हणतो. भाषा ही मुख्यत: ध्वनींच्या सानुक्रमरचनेपासून बनलेली आहे. हि रचना मुखातील वागिंद्रियातून अभिव्यक्त होते. भाषा हे विचारविनियमाचे प्रभावी माध्यम आहे. ज्यामार्फत आपण आपले विचार समाजातील सर्व स्तरांतील वर्गापर्यंत पोहचवू शकतो. यासाठी आपण आकाशवाणी, दूरचित्रवाणी, वृत्तपत्र नियतकालिके किंवा मासिके इत्यादी प्रसारमाध्यमांचा उपयोग करोत असतो.

भाषा हे संदेश देवाणघेवाण करण्याचे कार्य करते. त्यामुळे ही एक बौद्धिक क्रिया आहे. यांची नाळ भावना, कल्पना, विचार, संकल्पना आणि काही प्रमाणात विकारांशी जोडल्या गेली आहे. यांचे प्रतिबिंब त्यांच्या बोलण्यातून आपल्याला दिसते. भाषा ही सार्वभौम असते. व्यक्ती समाज-समूहाला एकाच सूत्रांमध्ये बांधण्याचे कार्य करते. भाषा ही संस्कृतीचे व्यवच्छेदक लक्षण मानले जाते.

भाषावैज्ञानिकांच्या दृष्टिकोनातून मानववंशशास्त्राला दखिल भाषाशास्त्राची एक उपशाखा मानली पाहिजे. कारण एखाद्या लहान मूलांच्या कानावर भाषा पडली असता, ते मूल लवकर ती भाषा आत्मसात करते. यालाच आपण 'भाषिक क्षमता' म्हणतो. असा सिद्धांत भाषावैज्ञानिक चॉमस्की, सोस्यूर, नोअम, सर विल्यम जोन्स यांनी मांडला. (इ. स. 1768) मध्ये कोलकत्ता येथे मांडला. भाषेच्या संदर्भात अनेक गैरसमजूती मानल्या जातात.

उदा. 'भाषा' असा विषय येताच आपणास हे गृहीत असते की, त्याचे स्वरुप लिखित स्वरुपातच असले पाहिजे. तो हाताने लिहिलेला नसावा. हा गैरसमज आपल्या मनावर लहानपणापासूनच असते. थोडक्यात लेखन ही भाषेच्या संदर्भातोल अपरिहार्य घटना आहे.

वास्तविक पाहता सर्वागाने भाषेचा अभ्यास करणारे क्षेत्र जेव्हा अस्तित्वात आले. तेव्हा भाषेला स्वत:ची संरचना असते, हे सर्व परिचित आहे. भाषा हे एक स्वतंत्र क्षेत्र असून त्याचा अभ्यास करणारी एक नवव्यवस्था आहे. त्याला आपण 'भाषाविज्ञान' म्हणतो. भाषाविज्ञानाच्या

शाखेमध्ये कोणत्याही बोलीचा अथवा इतर भाषेचा अभ्यास नसतो, तर भाषा पद्धतीचा सर्वांगाने अभ्यास असतो. ना. गो. कालेलकरांनी भाषेची नाळ आशयावर कार्यरत असलेल्या ध्वनीशी जोडली आहे. ही भाषा समाजव्यवहाराला सहाय्यभूत करणारी आहे. त्यामुळे भाषा एक पद्धत आहे. ज्या ज्या शाखेमध्य भाषेचा सर्वांगाने विचार केला जातो. त्या क्षेत्रांचा परिचय खालीलप्रमाणे -

भाषाविज्ञानाची कक्षा

1. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, 2. उपयोजित भाषाविज्ञान, 3. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, 4. समाजविज्ञान 5. मनोवैज्ञानिक भाषाविज्ञान, 6. मानववंश भाषाविज्ञान, 7. गणित भाषाविज्ञान

या शाखांमध्ये भाषेचा अभ्यास केला जातो. प्रत्येक प्रांताचे कार्य भाषेसाठी अतिशय उपयोगी आणि महत्त्वाचे मानल्या गेले आहे. ख-या अर्थाने विद्यार्थ्यांना हा विषय थोडयाफार प्रमाणात अवघड वाटतो. पण वास्तविक पाहता या अभ्यासक्षेत्राची आज मराठी भाषेला आणि साहित्याला अतिशय आवश्यकता आहे. कारण या मधून भारतामध्ये बोलल्या जाणा-या अनेक भाषांचा अभ्यास केला जातो.

उदा. तामिळ, तेलगू, मल्यालम, मराठी, हिन्दी, संस्कृत, उडिसा, कन्नड, आसामची भाषा, पंजाबी, खानदेशी, व-हाडी, डोंगी, नासिकची बागलान इत्यादी, अनेक भाषा आज भारतामध्ये प्रचलित आहे. ज्यांची आपल्याला ओळख देखील नसेल. अशा अज्ञात भाषांचा समावेश भाषा विज्ञानामध्ये आपल्याला पहायला मिळतो. यांचा आपण पुढील दृष्टिकोनातून विचार करणार आहोत.

प्रस्तुत लेखाचे प्रयोजन भाषा आणि भाषाविज्ञानाचे स्वरुप सविस्तरपणे अभ्यास हे यामागचे मुख्य प्रयोजन आहे. भाषाविज्ञानाच्या उपयोजिलेल्या ज्या संज्ञा आहेत. त्यामध्ये सोस्यूर (1857-1913) या स्विस भाषावैज्ञानिकाने भाषेची संरचना सांगून भाषाव्यवस्था आणि भाषिक वर्तन असे दोन मुद्दे मांडले आहेत. मात्र भाषेला स्वत:चे अस्तित्व नसते. मात्र या भाषिक वर्तनाला अनेक पैलू असतात. कारण आपले विचार व्यक्त करुन समाजापर्यंत पोहचविण्याचे एकमेव प्रभावी माध्यम भाषाच करत असते.

'लांग' या शब्दापासून सोस्यूर यांने भाषाव्यवस्थेची संकल्पना मांडली. ही एक सामूहिक जाणिव आहे. भाषेचे सर्व घटक आणि व्याकरण, वाक्यविन्यास यांसारखी नियमव्यवस्था तिला लाभलेली आहे. (वाक्यविन्यास म्हणजे ज्या संरचनेतून आपण आपल्या विचारांची सांगड घालतो, ते इतरापर्यंत पोहचवितो, ज्यामधून शब्दांची मांडणी आपण वाक्यामध्ये तयार करतो त्याला आपण 'वाक्यविन्यास' म्हणतो).

भाषाविज्ञान कक्षेचा थोडक्यात परिचय

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान : या कक्षेमध्ये भिन्न-भिन्न (वेगवेगळया) भाषांचा तुलनात्मक अभ्यास केला जातो. यालाच इतिहास मागोवा घेणारी शाखा असेही आपण म्हणू शकतो. काल क्रमानुसार त्या-त्या भाषेचे स्थान शोधून तिच्या कालखंडानुसार मागोवा घेऊन त्यामधील भाषाभेद सांगणे, या ठिकाणी महत्त्वाचे असते. मुख्य हेतू भाषांतील परस्परसंबंध अभ्यासणे या लेखांचे उद्‌देश आहे.

वर्णनात्मक भाषाविज्ञानाला आपण संरचनावादी भाषाविज्ञान असेही म्हणतो. ही शाखा मुखत्त्वे आधुनिक भाषाविज्ञानाचा अभ्यास करणारी महत्त्वाची शाखा मानली जाते. यामध्ये एककालिक व संरचनात्मक विश्लेषणाला प्राधान्य असते. तर उपयोजित भाषाविज्ञानामध्ये भाषेची संरचना सांगून त्यांची मांडणी करणे आवश्यक आहे. मुद्‌दाहून या ठिकाणी विद्यार्थ्यांच्या पुढील अभ्यासासाठी याचा उपयोग व्हावा या हेतूने सर्व मुद्यांवर प्रकाश टाकण्याचा प्रयत्न केला आहे. शैक्षणिक, संवाद-भाषा, बहुभाषिक समाज यांचा समावेश उपयोजित भाषाविज्ञानमध्ये होतो.

समाजविज्ञान म्हणजे भाषा त्या सामाजिक वातावरणात वापरली जाते. त्यासमाज मनाचा परिणाम त्या भाषेवर पडत असतो. उदा. लोकसाहित्य, मनोवैज्ञानिक, गणितभाषाविज्ञान, मानववंश हिचा प्रत्यक्ष भाषाव्यवहारात उपयोग होतो. मनोवैज्ञानिक भाषेचे आपण एक उदाहरण घेता येईल. ते म्हणजे ज्या कुटुंबामध्ये लहान मूल लहानाचे मोठे होते त्या भाषेचा पडसाद त्यांच्या मनावर पडून ते मूल त्याच भाषेतून प्रथमपणे संवाद साधतो.

थोडक्यात भाषेचा वापर आणि मानवी मनाची समाजघडण या ठिकाणी अतिशय महत्त्वची असते.

संदर्भ ग्रंथः -

1. कानडे मु. श्री, मराठीचा भाषिक अभ्यास, स्नेहवर्धन प्रकाशन, नारायण पेठ, पुणे-30.
2. पुंडे द. दि., सुलभ भाषाविज्ञान, स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे
3. गणोरकर प्रभा (संपा.), संज्ञा संकल्पना कोश, भटकळ प्रकाशन, मुंबई
4. मालशे स. गं., भाषाविज्ञान परिचय

अतिथी अध्यापिका, आधुनिक विभाग - मराठी
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

हिन्दी एवं संस्कृत-व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन

✍सुश्री एल्. सविता आर्या

व्याकरण की परिभाषा है-व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम् । यह परिभाषा हिन्दी-व्याकरण हो या संस्कृत-व्याकरण उभयत्र समान रूप से अर्थगत होती है । क्योंकि किसी भी भाषा के ज्ञान के लिये शब्दों का ज्ञान अनिवार्य होता है और शब्दों का प्रयोग ज्ञान जिससे हो उसे व्याकरण कहते हैं । शब्द ज्ञान के लिये उस भाषा की वर्णमाला का ज्ञान आवश्यक होता है । क्योंकि भाषा का मूल आधार होती है वर्णमाला । वर्ण ज्ञान का तात्पर्य अक्षर ज्ञान से है, संस्कृत-व्याकरण में वर्ण शब्द के लिये अक्षर शब्द का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में मिलता है, तद्यथा ऋषि दयानन्द कृत वर्णोच्चारणशिक्षा में-

अक्षरं न क्षरं विद्यात् अश्नोतेर्वा सरोक्षरम् ।
वर्णं वाऽऽहुः पूर्वसूत्रे किमर्थमुपदिश्यते ॥

हिन्दी-व्याकरण के अनुसार **वर्णमाला की परिभाषा**-किसी भाषा के समस्त वर्णों के क्रमबद्ध समूह को वर्णमाला कहते हैं । हिन्दी-व्याकरण के अध्ययन के लिये हिन्दी की मानक वर्णमाला का ज्ञान प्राथमिक है, जो कि सबसे अधिक प्रचलित और प्राचीन वर्गीकृत स्वर एवं व्यञ्जन में मिलता है ।

स्वर -उन ध्वनियों को कहते हैं जो कि स्वयं उच्चरित होते हैं ।

स्वयं राजन्ते इति स्वराः इति पाणिनीयशिक्षा ।

व्यञ्जन - व्यञ्जन उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वरों की सहायता से उच्चरित होते हैं ।

अन्वग्भवति व्यञ्जनम् इति पाणिनीयशिक्षा ।

वर्णमाला-हिन्दी की वर्णमाला के अन्तर्गत 13 स्वर एवं 33 व्यञ्जन हैं, इसके अतिरिक्त अनुस्वार, विसर्ग और चन्द्रबिन्दु ये कुल मिलाकर 49 वर्णसमूह मिलता है ।

संस्कृत-वर्णमाला के अन्तर्गत **त्रिषष्टि वर्णाः** कुल 63 वर्ण वर्णोच्चारणशिक्षा में निर्दिष्ट हैं।

हिन्दी में व्यञ्जन-समूह के लिये कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, पवर्ग आदि व्यवहार होता है, संस्कृत-व्याकरण में कु, चु, टु, तु, पु का व्यवहार प्रसिद्ध है । इन कु, चु, टु, तु का ही विकृत रूप है कवर्ग, चवर्गादि । जैसे कि पाणिनि ने-**कुहोश्चुः** (7-4-62), **चुटू** (1-3-7), **चोः कुः**

(8-2-30), **ष्टुना ष्टुः** (8-4-41) आदि प्रयोग करके **अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** (1-1-69) इस सूत्र द्वारा उदित् निर्देश से उनके सवर्णी का ग्रहण बताया है । सवर्णी का तात्पर्य है समान वर्णों का समूह, जैसे कि क, ख, ग, घ, ङ इन वर्णों में समानता देखे जाने से कु इतना मात्र उच्चारण से वह पाँच वर्णों का वर्ण समूह जाना जाता है, जिसे कि हिन्दी में वर्ग कहा जाता है अतः कवर्ग चवर्गादि व्यवहार हिन्दी में प्रसिद्ध है ।

उच्चारण स्थान के आधार पर-वर्ण का उच्चारण करते समय, श्वास वायु मुख के जिस अवयव से टकराती है, उसे वर्ण का उच्चारण स्थान कहते हैं । जैसे-कण्ठ्य, तालु, मूर्धा, ओष्ठ्य, दन्त, नासिका । इन वर्ग समूह का जो स्थान निर्देश हिन्दी व्याकरण में है वो पाणिनि के संस्कृत-व्याकरण में भी लगभग समान ही मिलता है । स्थाननिर्देश करते हुए पाणिनि का वचन है-

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।

जिह्वामूलश्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ।।पा.शि.१४।।

1. **कण्ठ्य**-कण्ठ से उच्चरित ध्वनियों को कण्ठ्य ध्वनियाँ कहते हैं, जैसे-क, ख, ग, घ, ङ और विसर्ग तथा अ, आ स्वर भी कण्ठ्य हैं । ह के उच्चारण के लिये हिन्दी-व्याकरण के अन्तर्गत काकल्य ध्वनि स्थान का निर्देश है किन्तु संस्कृत-व्याकरण में तो ह को भी कण्ठ्य ही माना गया है, जैसे-**अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः**-पाणिनिशिक्षा ।

2. **तालव्य**-जिस ध्वनि का उच्चारण तालु से किया जाता है, जैसे-च, छ, ज, झ, ञ, य, श तथा इ, ई । तत्सम संस्कृत-व्याकरण में **इचुयशानां तालु**-पाणिनीयशिक्षा ।

3. **मूर्धन्य**-जिन ध्वनियों का उच्चारण मूर्धा की सहायता से किया जाता है, इसमें टवर्ग तथा र, ष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं । संस्कृत-व्याकरण में पाणिनिशिक्षा का सूत्र है-**ऋटुरषाणां मूर्धा ।**

4. **दन्त**-दाँत की सहायता से उच्चरित ध्वनियाँ दन्त्य हैं, इसमें जिह्वाग्र या जीभ के नोंक की सहायता ली जाती है । हिन्दी के त, थ, द, ध दन्त्य हैं । न एवं ल को **वर्त्स्य** कहा है । वर्त्स्य मतलब मसूडे की सहायता से उत्पन्न जो ध्वनि । ल को हिन्दी-व्याकरण के अन्तर्गत **पार्श्विक व्यञ्जन** भी कहा जाता है । संस्कृत में न और ल दोनों वर्णों को दन्त्य वर्ण के अन्तर्गत ही अन्तर्भूत कर लिया जाता है, सूत्र है-**लृतुलसानां दन्त्याः** पाणिनीयशिक्षा ।

5. **दन्तोष्ठ्य**-जिनका उच्चारण ऊपर के दाँत और नीचे के होंठ की सहायता से होता है । हिन्दी-व्याकरण के अन्तर्गत व एवं फ दन्तोष्ठ्य वर्ण हैं, किन्तु संस्कृत-व्याकरण में केवल वकार को दन्तोष्ठ्य माना है, इसमें फ को भी ओष्ठ्य ही माना है, जैसे कि पाणिनीयशिक्षा का सूत्र है-**वकारोदन्त्योष्ठौ ।**

6. **ओष्ठ्य**-जिनका उच्चारण दोनों होठों से हो, जैसे-प, फ, ब, भ, म इन्हें ओष्ठ्य कहते हैं । पाणिनीयशिक्षा में कहा है-**उपूपध्मानीयानां ओष्ठ्याः ।**

7. **कण्ठोष्ठ्य**-कण्ठ से जीभ और होठों के कुछ स्पर्श से बोली जाने वाली ध्वनि जैसे-ओ एवं औ । इसी को पाणिनि कहते हैं-**ओदौतौ कण्ठ्योष्ठौ ।**

8. **कण्ठतालु**-कण्ठ से जीभ और तालु के कुछ स्पर्श से बोली जाने वाली ध्वनि जैसे-ए एवं ऐ । इसी को पाणिनि कहते हैं-**एदैतौ कण्ठ्यतालु ।**

9. **जिह्वामूलीय**-जिन ध्वनियों का उच्चारण जिह्वा के मूल या अन्तिम भाग से किया जाता है वे जिह्वामूलीय ध्वनियाँ हैं, इनका प्रयोग हिन्दी में नहीं देखा जाता है किन्तु संस्कृत-व्याकरण में इनका प्रयोग होता है ।

10. **अनुनासिक**-जिन ध्वनियों का उच्चारण नासिका मार्ग से किया जाता है । उन ध्वनियों को अनुनासिक कहा जाता है । अनुनासिक का चिह्न (ँ) चन्द्र बिन्दु है ।

अनुनासिक व्यञ्जन होता है । प्रत्येक वर्ग का पञ्चम वर्ण ङ, ञ, ण, न, म ।

संयुक्त वर्ण-क्ष, त्र, ज्ञ आदि जैसे हिन्दी वर्णमाला के अन्तर्गत देखे जाते हैं वैसे संस्कृत-व्याकरण में भी इनका प्रयोग होता है ।

मात्रा-किसी भी स्वर के उच्चारण में लगने वाले समय की नाप को मात्रा कहते हैं । जिसे संस्कृत-व्याकरण में काल या मात्रा पद से सम्बोधित किया जाता है जैसे-एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक । हिन्दी में एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक के लिये जैसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत का प्रयोग होता है ।

अष्टाध्यायी में इसके लिये सूत्र लिखा है पाणिनि ने-**ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः** (1-2-27)

ह्रस्वार्ध-हिन्दी व्याकरण के अन्तर्गत ह्रस्वार्ध का भी प्रयोग देखा जाता है किन्तु संस्कृत-व्याकरण में ह्रस्वार्ध का प्रयोग नहीं मिलता है । भाष्यकार पतञ्जलि ने भी इसका निषेध किया है ।

ध्वनियों के वर्गीकरण के आधार पर हिन्दी में मुख्य रूप से ६विभाग देखे जाते हैं-

1. प्रयत्न के आधार पर
2. उच्चारण के आधार पर
3. संयुक्त व असंयुक्त के आधार पर
4. स्थान के आधार पर
5. ह्रस्वता व दीर्घता के आधार पर
6. प्राणत्व के आधार पर

प्रयत्न के आधार पर-ध्वनि को उच्चरित करने के लिये ओष्ठ-ताल्वादिस्थानों का श्वासादि का जो प्रयास होता है उसे प्रयत्न कहते हैं । संस्कृत व्याकरण में पाणिनीयशिक्षा में दो प्रकार के

प्रयत्नों का निर्देश किया गया है-**प्रयत्नोऽपि द्विविधः, आन्तरिकं बाह्यश्च ।** उसी प्रकार हिन्दी व्याकरण में भी दो प्रयत्न बताये हैं-आन्तरिक एवं बाह्य ।

बाह्य प्रयत्न के अन्तर्गत स्वरों के उच्चारण के **सानुनासिक** एवं **निरनुनासिक** के भेद से 2 प्रकार के भेद देखे जाते हैं उसी प्रकार संस्कृत में भी इनका श्रवण होता है । बाह्य प्रयत्न के आधार पर ही व्यञ्जन ध्वनियों के भी दो भेद **घोष** एवं **अघोष** उभयत्र समान मिलते हैं ।

आभ्यन्तर प्रयत्न के आधार पर जिस प्रकार से हिन्दी व्याकरण में भेद निदिष्ट हैं ठीक उसी प्रकार संस्कृत में भी निर्दिष्ट हैं । यथा-**संवृत, अर्धसंवृत, अर्धविवृत विवृत ।** अर्धसंवृत एवं अर्धविवृत को ही संस्कृत व्याकरण में ईषत्संवृत एवं ईषत् विवृत कहा जाता है ।

इस प्रकार संस्कृत-व्याकरण का ही अंश होने के कारण हिन्दी-व्याकरण के अन्तर्गत अत्यल्प ही भेद देखा जाता है । अधिकाधिक रूप से दोनों ही व्याकरण में समानता प्राप्त होती है ।

सन्दर्भग्रन्थ

1. वर्णोच्चारण शिक्षा ।
2. पाणिनीय शिक्षा ।
3. अष्टाध्यायी शिक्षा ।

अतिथि अध्यापिका,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
राजीव गान्धी परिसर,
श्रृङ्गेरी

❖❖❖

पारम्परिक संस्कृत संस्थानों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की प्रासंगिकता

✍श्रीमती अंजु शर्मा

परिवर्तन शाश्वत सत्य है... युग ने फिर करवट ली है... चिंतन और विचारों की पृष्ठभूमि बदलती नजर आ रही है... प्राचीनता में नूतनता का समावेश हो रहा है । सच तो ये है कि, आज सम्पूर्ण विश्व के एक परिधि में सिमट जाने से परम्पराओं पर भी वक्त अपनी छाप छोडने लगा है। विभिन्न संस्कृतयों के समावेश से स्वत: ही आधुनिकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी है । समाज और सभ्यता में अपनी जड जमाती आधुनिकता के प्रभाव से शिक्षा भी अछूती नहीं रही है । वर्तमान समय में शिक्षा पद्धति में नित-नए परिवर्तन के कारण नए-नए प्रयोग भी किए जा रहे हैंऔर भाषा ही इन सब का माध्यम है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं । बदलते दौर में भाषा में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय दिखाई देने लगा है । परन्तु यह भी शाश्वत सत्य है कि, भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पहचान देनेवाली भाषा संस्कृत है । इसी भाषा में हमारी शिक्षा पद्धति की नींव रखी है । दरअसल संस्कृत पारम्परिक भाषा है... वेद पुराणों की भाषा है ... शुभ मंगल उच्चारण है ... प्राचीन ऋषि मुनियों और सन्त कवियों की बाली है ।

सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक महत्त्व के कारण संस्कृत को एक प्रतिष्ठित स्थान पर स्थापित कर दिया गया है । फल स्वरूप वह जनसामान्य की बोली का दर्जा नहीं प्राप्त कर सकीं परन्तु संस्कृत से ही जन्मी उसकी अपनी हिन्दी आम जन की जुबां पर चढकर बोलने लगी और इस तरह हिन्दी सामान्य जन द्वारा सामान्य बोलचाल हेतु प्रयोग में लायी जाने लगी । वस्तुत: हिन्दी और संस्कृत आपस में इस कदर गुंथी है कि, इन्हें किसी भी रूप में एक-दूसरे से पृथक करना सम्भव ही नहीं है । संस्कृत अगर ज्ञान की भाषा है तो हिन्दी संवाद की भाषा है.... संस्कृत को सीखने का जरिया है हिन्दी.... ऐसे में पारम्परिक संस्कृत संस्थानों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की प्रासंगिकता और भी बढ जाती है । आज वैश्वीकरण के कारण जब सभी राष्ट्र एक दूसरे की संस्कृति और इतिहास को जानने का प्रयत्न कर रहे है, तो ऐसे में भारत की ओर रुख करने वाले प्रत्येक जिज्ञासु को संस्कृत से जुड़ना अवश्य होगा और संस्कृत से जुडने के लिए हिन्दी को ही माध्यम बनाना होगा, जो आज भारत की राष्ट्रभाषा से सम्मानित है, जो भारत की सम्पर्क भाषा है । संस्कृत और हिन्दी के शब्द और उनकी व्याकरण की समानता से भी उनका अध्ययन-अध्यापन

प्रासंगिक हो जाता है । संस्कृत के श्लोकों का सरल एवं प्रभावी अनुवाद या कहें कि उसका सरलीकरण जितना हिन्दी में सम्भव है वैसा अन्य किसी भाषा में नहीं । दोनों भाषाओं की अपनी-अपनी विशिष्टता है और दोनों को किसी भी तरह से कमतर नहीं आँका जा सकता । विश्वस्तर पर भारत को प्रतिष्ठित करने हेतु इन दोनों को साथ लेकर चलना आवश्यक है ।

चूँकि वर्तमान समय तकनीकी और मशीनीकरण का युग है । अत: ऐसे में इन भाषाओं कों सहजकर रखना इनके साहित्य का संरक्षण अवश्यंभावी हो चुका है और यह तभी संभव है जब प्राचीन परम्पराओं की इन प्राचीन भाषाओं का पारम्परिक संस्थानों मं समन्वयात्मक रूप से अध्ययन और अध्यापन कराया जाए ताकि भारत की पहचान और संस्कृति को एक नया आयाम भी मिल सक और इसे संरक्षित भी रखा जा सके ।

गवेषिका,
गुरुनानक खालसा महाविद्यालय
माटुंगा, मुम्बई

❖❖❖

बड़ों के प्रति ऐसा हो व्यवहार

✍मुकेश शर्मा

- अपने से श्रेष्ठ और अपने से निम्न व्यक्तियों की शय्या और आसन पर नहीं बैठना चाहिए।
न साम्मुख्ये गुरोः स्थेयं राज्ञः श्रेष्ठस्य कस्यचित् । (शुक्रनीति ०३/१४७)
- गुरु, राजा या किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के सम्मुख बिना अनुमति के नहीं बैठना चाहिए ।
- गुरु, देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि राजा, सूर्य, चन्द्रमा और अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों के सामने पैर नहीं फैलाने चाहिए ।
- गुरु तथा श्रेष्ठ पुरुषों के किसी वचन का अपने वचन से खण्डन नहीं करना चाहिए ।
- गुरुजनों तथा राजा के सामने ऊँचे आसन पर न बैठे और उनके वचनों को तर्क द्वारा खण्डन न करें ।
- जा मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषों के सम्मुख ऊँचे आसन पर बैठता है, वह निश्चय ही इस लोक में और परलोक में कष्ट पाता है ।
- अपने से बड़ों के सामने मल-मूत्र त्याग या थूँकना नहीं चाहिए ।
- बड़े पुरुष सोते हा, तो उन्हें नहीं जगाना चाहिए ।
- अत्यन्त क्रोध की अवस्था में भी अपने से पूज्य पुरुषों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।
- देव, मन्दिर, ब्राह्मण, गाय, और अपने से बडों के पास पहुँचने से पहले ही रथ (वाहन) से उतर जाना चाहिए ।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध की शालीनता

- गुरु को चाहिए कि, वह शिष्य को परी तरह मानते हुए और उसकी उन्नति की इच्छा करते हुए सभी धर्मों में कुछ भी गुप्त न रखते हुए उसे विद्या प्रदान करें । (आपस्तम्बधर्मसूत्र 1/2/8/25) ।
- गुरु आपत्ति के सिवाय अन्य समय में शिष्य के अध्ययन में विघ्न पहुँचाकर उसे अपने किसी कार्य में न लगाए ।
- गुरु को बहुत विचार करके ही शिष्य बनाने चाहिए अन्यथा शिष्य के दोष के कारण गुरु भी नरक में जा सकता है । (रूद्रमालय 2/86)

- मन्त्रिदोषश्च राजानं जायादोषः पतिं यथा । तथा
  प्राप्नोत्यसन्देहं शिष्य-पापं गुरुं प्रिये ।। (कुलार्णवतंत्र 11/109)
- अर्थात् जिस प्रकार मन्त्री का पाप राजा को और स्त्री का पाप पति को प्राप्त होता ह । उसी प्रकार निश्चय शिष्य का पाप गुरु को प्राप्त होता है ।
- एकमात्र पति ही स्त्रियों का गुरु है । अतः स्त्री को पति के सिवाय किसी को गुरु नहीं बनाना चाहिए । इस सन्दर्भ में पद्मपुराण (सर्ग 5/52) मे कहा गया है - पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् ।
- गुरु के सामने किसी वस्तु का सहारा लेकर अथवा पैरों को फैलाकर नहीं बैठना चाहिए ।
- क्रुद्ध गुरु के मुख पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए ।
- शिष्य को चाहिए कि वह परोक्ष में भी गुरु के नाम का उच्चारण न करें और गुरु की गति, भाषण, चेष्टा आदि की नकल न करें ।
- जो दुष्ट संकल्प वाले निषिद्ध (दुराचारी) गुरु का शिष्य बनता है, उसे महाप्रलय पर्यन्त पुनः मनुष्य शरीर नहीं मिलता ।
- यत्रानन्दः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते ।
  वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ।। (शिवपुराण वा 3 15/46-47)
- अर्थात् - जिसके पास एक वर्ष तक रहकर भी शिष्य में थोडे से भी आनंद और प्रबोध की उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोडकर दूसरे का गुरुआश्रय ले ।

शिक्षाशास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

शिक्षा

✍सस्मिता राणा

बहुत समय पहले की बात है, सुदूर दक्षिण में किसी प्रतापी राजा का राज्य था, राजा के तीन पुत्र थे । एक दिन राजा के मन में आया कि, पुत्रों को कुछ ऐसी शिक्षा दी जाए कि, समय आने पर वो राजकाज संभाल सकें । इसी विचार के साथ राजा ने सभी पुत्रों को दरबार में बुलाया और बोला, 'पत्रों, हमारे राज्य में नाशपाती का कोई वृक्ष नहीं है । मैं चाहता हूँ तुम सब चार-चार महीने के अंतराल पर इस वृक्ष की तलाश में जाओ और पता लागाओ कि, वह कैसा होता है ?' राजा की आज्ञा पाकर तीनों पुत्र बारी-बारी से गए और वापस लौट आये । सभी पुत्रों के लौट आने पर राजा ने पुनः सभी को दरबार में बुलाया और उस पेड़ के बारे में बताने को कहा, पहला पुत्र बोला, 'पिताजी वह पेड़ तो बिलकुल टेढा-मेढा और सूखा हुआ था ।'

नहीं-नहीं वो तो बिलकुल हरा-भरा था, लेकिन, शायद उसमें कुछ कमो थी, क्योंकि उस पर एक भी फूल नहीं लगा था, दूसरे पुत्र ने पहले को बीच में ही रोकते हुए कहा । फिर तीसरा पुत्र बोला, 'भैया, लगता है आप भी कोई गलत पेड देख आए क्योंकि मैंने सचमुच नाशपाती का पेड देखा, वो बहुत ही शानदार था और फलों से लदा पडा था ।' तीनों पुत्र अपनी-अपनी बात को लेकर आपस में विवाद करने लगे कि, तभी राजा अपने सिंहासन से उठे और बोले, 'पुत्रों, तुम्हें आपस में विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दरअसल तुम तीनों ही वृक्ष का सही वर्णन कर रहे हो, मैंने जानबूझ कर तुम्हें अलग-अलग मौसम में वृक्ष खोजने भेजा था और तुमने जो देखा वो उस मौसम के अनुसार था । मैं चाहता हूँ कि, इस अनुभव के आधार पर तुम तीन बातों को गाँठ बाँध लो, पहली, किसी चीज के बारे में सही और पूर्ण जानकारी चाहिए तो तुम्हें उसे लम्बे समय तक देखना-परखना चाहिए, । दूसरी, हर मौसम एक सा नहीं होता, जिस प्रकार वृक्ष मौसम के अनुसार सूखता, हरा-भरा या फलों से लदा रहता है

अतः अगर तुम कभी, भी बुरे दौर से गुजर रहे हो तो अपनी हिम्मत और धैर्य बनाए रखो । तीसरी बात, अपनी बात को ही सही मानकर उस पर अडे मत रहो, दूसरों के विचारों को भी जानों, यह संसार ज्ञान से भरा पडा है । चाहकर भी तुम अकेले सारा ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते, इसलिए भ्रम की स्थिति में किसी ज्ञानी व्यक्ति से सलाह लेने में संकोच मत करो ।

शिक्षाशास्त्री
रा. सं. सं., मुम्बई परिसर ।

जगदगुरु आदि शंकराचार्य के चार शिष्य

✍विकास कुमार पाण्डेय

जगद्गुरु आदिशंकराचार्य भलीभाँति परिचित थे कि, कोई भी विद्या या साधना संप्रदायानुगत हुए बिना स्थाई नहीं होती । वेदान्त साधना के आदर्श अद्वैत की अमृतधारा अनवरत प्रवाहित होती रहे, इसके लिए उन्होंने चार प्रान्तों में चार मठ स्थापित किए । आचार्य ने पद्मपाद, हस्तामलक सुरेश्वर और त्रोटक अपने इन चार प्रधान शिष्यों को चार मठों पर का प्रथम कार्यभार सौंपा । जिसमें पद्मपाद की कथा इस प्रकार है ।

सनन्दन से पद्मपाद तक

सनन्दन नामक एक चोल देशीय ब्राह्मण कुमार तत्वज्ञान की प्राप्ति के निमित्त सद्गुरु की खोज में धर्मनगरी काशी आया, काशी में ही उसे शंकर की अलौकिक एवं असामान्य प्रतिभा की चर्चा सुनने को मिली बालक मन श्रद्धालु हो उठा । शंकर को गुरु रूप में वरण करने की इच्छा से उनके चरणों में प्रणत होकर अपनी अभिलाषा व्यक्त की । आचार्य अनुमति पा कर सनन्दन उनके साथ रहने लगे । कुछही दिनों की आचार्य संगति और उनके देवोमय प्रभाव ने सनन्दन को इतना आकृष्ट कर लिया कि उन्होंनें आचार्य से सन्यास ग्रहण करने की प्रार्थना कर डाली । आचार्य ने भी प्रसन्न चित्त सनन्दन के वैदिक लगाव को देखते हुए सन्यास धर्म की दीक्षा देकर शिष्य रुप में उसे वरण कर लिया । आचार्य का शिष्यत्व ग्रहण कर सांसारिक प्रपंचों से वीतराग हुए । सनन्दन ने 'बल' नामक पर्वत पर जाकर भगवान नृसिंह देव की कठोर आराधना की । तीव्र से तीव्र तर आराधना में लगे सनन्दन को नृसिंह देव के दर्शन प्राप्त हुए और उन्हे अभय वरदान प्राप्त हुआ । भगवद् कृपा प्राप्त कर सनन्दन पुनः आचार्य सेवा रत हुए । असीम गुरु भक्ति उन्हें अति शीघ्र ही आचार्य का विशेष प्रियपात्र बना दिया । यही बात आचार्य के अन्य शिष्यों को खटकती थी । आचार्य को यह ज्ञात था इसलिए आचार्य ने यह सोचकर एक उपाय तैयार किया जिससे सनन्दन की श्रेष्ठता भी सिद्ध हो जाए और अन्य शिष्यों के हृदय में पनप रहीकलुषित विचारधारा का भी समन हो उठे । कहते हैं कि एक दिन किसी प्रयोजन बस सनन्दन अलकनंदा नदी के उस पार गए हुए थे । उसी क्षण आदि शंकराचार्य ने सनन्दन को श्रेष्ठतम सिद्ध करने के लिए - मानो कोई विशेष प्रयोजन हो, इस भाव से उच्च स्वर में आवाज लगाई - सनन्दन ! सनन्दन ! शीघ्र आओ । गुरुदेव की आवाज सुनकर सनन्दन विचलित हो गया और उसे लगाकि कही गुरुदेव संकट में तो

नहीं हैं, यही सोचकर प्राणों का मोह किए बिना सनन्दन सीधे अलकनन्दा नदी में कूद पड़े । हिमाच्छन्न अलकनन्दा का प्रवाह इतना तीव्र था कि उसे पार करना सबके बस की बात नहीं थी । अन्य शिष्य यह दृश्य देखकर सनन्दन की मृत्यु निश्चित मान कर सब हाहाकार करने लगे । पर देव रक्षित सनन्दन के प्राणों की रक्षा हेतु आद्य शक्ति महामाया की कृपा से नदी में जगह-जगह कमल प्रस्फुटित हो उठे और सनन्दनइन्ही कमलों पर पैर रखते हुए नदी पार कर हाँफते हुए (आचार्य) आदि गुरु शंकराचार्य के पास पहुंचे । यह सब देखकर सारे शिष्य अलौकिक घटना से अवाक् थे । आचार्य ने सभी शिष्यों की ओर इशारा करते हुए कहा कि सनन्दन पर भगवती की अत्यन्त कृपा है इसलिए आज से इसका नाम पद्मपाद होगा ।

शिक्षाशास्त्रो
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

रामचरितमानस में निर्गुण और सगुण ब्रह्म का समन्वय

✍रविशंकर पाण्डेय

जिस समय में मानस की रचना हो रही थी उस समय भारत में मुख्यत: चार दार्शनिक सम्प्रदायप्रचलित थे – द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं शद्धाद्वैत । तुलसीदासजी ने अपने महान काव्य रामचरित मानस में इन चारों सिद्धान्तों का समन्वय किया है । सभी दार्शनिक वे चाहे द्वैतवादी हों या अद्वैतवादी हों, शद्धाद्वैतवादी हों या विशिष्टाद्वैतवादी, इनके कथनों में अपने कथनों का समर्थन पाकर इन्हें अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं ।

तुलसीदासजी उन भक्त कवियों में से एक थे जिन्होंने तात्कालिक सामन्तवादी परिस्थितियों का गहराई के साथ अध्ययन एवं अनुशीलन करके समाज में व्याप्त विषमता एवं वैमनस्यता दूर करने का प्रयास किया । इस समन्वय के लिए तुलसी ने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में समन्वयात्मक दृष्टिकाण अपनाया जिसके कारण इन्हें लोकनायक भी कहा जाता है । तुलसीदास जी सगुण और निर्गुण का सदैव समन्वय करते हैं । वे दोनों में कोई भेद नहीं मानते – रामचरितमानस में इन्होंने शिव जी के माध्यम से अपनी बात कही है ।

निज भ्रम नहिं समुझई अज्ञानी ।
प्रभु पर मोह धरहि जडप्रानी ॥ (रा. च. मा. बालकाण्ड दोहा ११५)

उनका कहना था कि, सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है । वस्तुत: जिस प्रकार जल सगुण है और हिम अर्थात् बर्फ निर्गुण अत: दोनों में कोई अन्तर नहीं है मात्र समझ का फेर है ।राम यद्यपि सगुण स्वरूप है परन्तु उनमें और निगुर्ण ब्रह्म में तनिक भी अन्तर नहीं है । राजा जनक भी राम को निर्गुण ही मानते हैं और साथ ही गुणराशि कहते हैं । **'निर्गुण सगुण विषम सम रूप'** । मत्यु के पश्चात् जटायु जी ने भगवान की स्तुति इस प्रकार की है

'जुग पेखन तुम देखन हारे । विधि हरि शंभु नचावन हारे ॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा । और तुम्हहि को जाननिहारा ॥'

निगुर्ण और सगुण के अभेद भाव को व्यक्त करने के लिए ही तुलसीदास जी ने राम को विष्णु का अवतार मानकर स्वयं निराकार ब्रह्म ही माना है । जबकि पुराणों में भगवान विष्णु के तीन रूप हैं, सत्व, रज्, तम् के प्रतोक ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में माने गए हैं और विष्णु

भगवान ने पृथ्वी के दु:खो को दूर करने के लिए मुख्य दस अवतार लिए हैं । जिसमें सातवां अवतार राम को माना जाता है । किन्तु तुलसीदासजी ने राम को परम् ब्रह्म माना है ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिसका मर्म नहीं जानते ऐसे राम हैं । चित्रकूट में अयोध्या वासियों के सामने राम का परिचय देते हुए महामुनि वशिष्ट ने कहा था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि सभी देवता राम की आज्ञा का पालन करते हैं ।

''शारद कोटि अमित चतुराई । विधि सत् कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
विष्णु कोटि सम पालन कर्ता, रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥(रा.च.मा.जं.का.)

उत्तरकाण्ड में परब्रह्म परमेश्वर की विशेषताओं का वर्णन करते हुए काकभुशुंडि ने गरुड़ से बतलाया था कि ऐसे परम् ब्रह्म परमेश्वर को विष्णु का अवतार नहीं कहा जा सकता ।

''एवमस्तु कहि रमानिवासा । हरषि चले कुम्भज रिषि पासा ॥''

यह सत्य है कि पुराणों के प्रभाव से रामचरित मानस में भगवान राम का रमा निवास और रमा रमण, रमानाथ तथा इन्दिरापति का वर्णन है । तात्पर्य यह है कि निर्गुण समझने वाले को तुलसी निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हैं और सगुण रूप की पूजा करने वाले मनुष्य के लिए सगुण रूप का वर्णन करते हैं, अत: निर्गुण और सगुण ब्रह्म ही तुलसी का प्रतिपाद्य विषय है ।

''निर्गुण ब्रह्म सगुण बपु धारी'' (रा.च.मा.बा.का.)

यहाँ हम इन्हें निर्गुण ब्रह्म के निरूपण में शंकराचार्य के समीप पाते हैं । और सगुण ब्रह्म के निरुपण मे रामानुज और वल्लभ के समीप पाते हैं । वे शंकराचार्य की भाँति ब्रह्म को न तो केवल निर्गुण ही कहते हैं । और बल्लभाचार्य की भाँति न तो केवल सगुण ही कहते हैं । बल्कि वेदान्त ने ब्रह्म के जितने स्वरूपों का निरूपण किया था । तुलसी ने उन सबका संश्लेषण निर्गुण और सगुण रूप में दिया है और अपने राम को दोनो का समन्वित रुप दे दिया है क्योंकि तुलसी की दृष्टि मे निर्गुण और सगुण में कोई तात्विक अन्तर नहीं जान पड़ता । अव्यक्त रूप वाला परम् ब्रह्म ही व्यक्त हो जाने पर सगुण कहलाता है ।

''हिय निर्गुण नयनहिं सगुण रसना नाम सुनाम
मतहु पुरर संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥'' (रा.च.मा.)

तुलसी समय-समय पर निर्गुण एवं सगुण के सापेक्षित महत्व एवं समन्वय का परिचय देते रहते हैं । वह समन्वय इसलिये कि वे जिन चरित नायक के चरित का वर्णन कर रहे हैं वे कोई और नहीं बल्कि नाना पुराण निगमागम सम्मत ब्रह्म ही हैं ।

अतः निष्कर्षतः हम यह कह सकतें है कि तुलसी ने ब्रह्म के विषय मे किसी वाद का अन्धानुकरण नहीं किया बल्कि सभी वादों की विशेषताओं के साथ उन्होंने ब्रह्म का निरूपण किया।

''अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा ।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥'' (रा.च.मा)

निर्गुण के बिना जाने सगुण की उपासना करें तो मोह हो जाता है । जैसे गरुड़ जी और भुशुण्डि जी को हुआ । निर्गुण को बुद्धि से निश्चित करके सगुण में प्रीति करना चाहिये । जैसे भोजन पच कर पक्वाशय के चला जाता है और इसका पता नहीं चलता उसी प्रकार अज्ञान को भक्ति पचा लेती है । सगुन और निर्गुण ब्रह्म का समन्वय करके श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम कर नमन कर अपने वाणी को विराम देता हूँ ।

संदर्भ

1. रामचरितमानस का दार्शनिक दृष्टिकोण : डॉ. सरोज उपाध्याय
2. रामचरितमानस : गो. तुलसीदास

शास्त्री, तृतीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

धरती के लाल

✍चन्द्रमा पौड्याल

रोने न देंगे इस धरती को
छाती चीर के खून हम बहाएँगे ।
हम रहें ना रह देखने को
पर सुबह हम नया गुल खिलाएँगे ॥

खून पसीना एक-एक कर
मिट्टी का कर्ज चुकाएँगे ।
झुकने न देंगे तिरंगे को
इस देश का मान बढाएँगे ॥

देश में होगी ईद, दीवाली
सरहद पे होली मनाएँगे ।
सर्वोच्च शिखर पे खडे होकर
जय हिन्द का नारा लगाएँगे ॥

देश के गौरव और कला को
दिग दिगन्त फैलाएँगे ।
जब नाज होगा भारत माँ को
ऐसा सवेरा हम लाएँगे ॥

प्राण अपने ही गवांकर
लोगों को जीना सिखाएँगे ।
डर से दूर होंगे अब एक-एक जन
अब तो ऐसा भारत बनाएँगे ॥

झेल सकें सब हर मुसीबत
अब ऐसा माहौल बनाएँगे ।
बुझा न पाएँगे हर ताकत
अब तो आँधी में दीपक जलाएँगे ॥

शास्त्री, तृतीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

पर्यावरण प्रदषण की समस्या

✍गोपाल पौड्याल

सामान्य जीवन प्रक्रिया में जब अवरोध होता है तब पर्यावरण की समस्या जन्म लेती है । यह अवरोध प्रकृति के कुछ तत्वों के अपनी मौलिक अवस्था में न रहने और विकृत हो जाने से प्रकट होता है । इन तत्वों मे प्रमुख है जल, वायु, मिट्टी आदि । पर्यावरणीय समस्याओं से मनुष्य और अन्य जीवधारियों को अपना सामान्य जीवन जीने में कठिनाई होने लगती है और कई बार जीवन–मरण का सवाल पैदा हो जाता है ।

प्रदूषण भी एक पर्यावरणीय समस्या है जो आज विश्वव्यापीबन गई है । उद्योगों और मोटरवाहनों का बढ़ता उत्सर्जन और वृक्षों की निर्मम कटाई प्रदूषण के कुछ मख़्य कारण हैं । विश्व में प्रति वर्ष लगभग 1.1 करोड़ हेक्टेयर का वन काटा जाता है । भारत में लगभग 10 लाख हेक्टयर के लगभग वन काटा जा रहा है । वनों के विनाश के कारण वन्य–जीव लुप्त हो रहे हैं । वनों के क्षेत्रफल में लगातार होती कमी के कारण भूमि का कटाव और रेगिस्तान क फैलाव में वृद्धि हुई है । प्रदूषण का अभिप्राय प्राकृतिक वातारण में होने वाले सभी हानिकारक परिवर्तनों से है जो मानवीय गतिविधियों का परिणाम है । प्रदूषण, पर्यावरण में दूषक पदार्थों के प्रवेश के कारण प्राकृतिक संतुलन में पैदा होनवाले दोष को कहते हैं । प्रदूषण पर्यावरण को और जीव–जन्तुओं को नुकसान पहुँचाते है । प्रदूषण का अर्थ है – हवा, पानी, मिट्टी आदि का अवांछित तत्वों से दूषित होना, जिसका सजीवों पर प्रत्यक्ष रुप से विपरीत प्रभाव पडता है, तथा पारिस्थितिकि तंत्र भी प्रभावित होता है । पर्यावरण प्रदूषण में मानव की विकास प्रक्रिया तथा आधुनिकता का महत्वपूर्ण योगदान है ।

प्रदूषण के मुख्य तीन प्रकार हैं–

वायु प्रदूषण

वायु में हानिकारक पदार्थ छोडनें से वायु प्रदूषित हो जाती है । यह स्वास्थ्य–समस्या पैदा करती है तथा पर्यावरण एवं सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाती है । इससे ओजोन पर्त में बदलाव आया है जिससे मौसम में परिवर्तन हो गया है । आधुनिकता तथा विकास ने बीते वर्षों में वायु को प्रदूषित कर दिया है । उद्योग, वाहन, शहरीकरण कुछ प्रमुख घटक हैं जिनसे वायु प्रदूषण बढता है।

वायु प्रदषण के कुछप्रकृति-जन्य कारण भी ह । जैसे मरुस्थलों में उठने वाले रेतील तूफान, जंगलो में लग जाने वाली आग एवं घाँस के जलने से उत्पन्न धुआँ कुछ ऐसे रसायनों को जन्म देता हैजिससे वायु प्रदूषित हो जाती है । प्रदूषण का स्त्रोत कोई भी देश हो सकता हैपर उसका प्रभाव सब जगह पडता है ।

वायु प्रदूषण के कुछ प्रमुख स्त्रोत

1. कार्बन मोनोक्साईड
2. कार्बन डायऑक्साईड
3. क्लोरो-फ्लोरो कार्बन
4. लैड
5. ओजोन
6. नाइट्रोजन आक्साइड

हवा में स्थित गैसों की उपस्थिति से मनुष्य, पशुओं तथा पक्षियों को गम्भीर समस्याओं का सामना करना पडता है । इसमें दमा, सर्दी-खाँसी, अँधापन, श्रवणशक्ति मे कमजोरी, त्वचा रोग जैसे अनेक प्रकार की बिमारियाँ पैदा होती है ।

जल प्रदूषण

जल प्रदूषण का अर्थ है पानी में अवांछित तथा घातक तत्त्वों की उपस्थिति से पानी का दूषित हो जाना, जिससे कि वह पीने योग्य नहीं रहता । जल प्रदूषण के विभिन्न कारण निम्नलिखित है:-

- मानव मल का नदियों, नहरों आदि में विसर्जन जिससे जल प्रदूषण होता है ।
- सफाई तथा सीवर का उचित प्रबंध न होना ।
- विभिन्न औद्योगिक इकाईयों द्वारा अपने कचरे तथा गंदे पानी का नदियों, नहरों में विसर्जन ।
- कृषि कार्यों में उपयोग होनेवाले जहरीले रसायनों तथा खादों का पानी में घुलना ।
- नदियों में कूड़े-कचरे, मानव-शवों और पारम्परिक प्रथाओं का पालन करते हुए उपयोग में आने वालेसामग्री का समीप के जल स्त्रोत में विसर्जन करना ।

जल प्रदुषण से मनुष्य, पशु, पक्षो तथा वनस्पति प्रभावित होते हैं ।

भूमि प्रदूषण (मृदा प्रदूषण)

भूमि प्रदूषणसे अभिप्राय जमीन पर जहरीले, अवांछित और अनुपयोगी पदार्थों का भूमि में विसर्जित करने से है।इससे भूमि का निम्नीकरण होता है तथा मिट्टो की गुणवत्ता प्रभावित होती है। ठोस अवशिष्ट पदार्थ के कारण आज भूमि में प्रदूषण अधिक फैल रहा है । ठोस कचरे में राख, काँच, फल तथा सब्जियों के छिलके, कागज, कपडे, प्लास्टिक, रबड, चमडा, ईंट, रेत इत्याति वस्तुएँ सम्मिलित हैं । अतः रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछित परिवर्तन, जिसका प्रभाव मनुष्य तथा अन्य जीवों पर पड या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट हो उसे भू-प्रदूषण कहते हैं । भूमि या मिट्टी एक अतिदुर्लभ संसाधन है । आज जिस गति से विश्व एवं भारत की जनसंख्या बढ रही है इन लोगों को भोजन की व्यवस्था करने के लिए भूमि का जरूरत से ज्यादा शोषण किया जा रहा है । जिसके परिणाम स्वरूप आज भूमि की पोषक क्षमता कम होती जा रही है । पोषकता बढाने के लिए मानव इसमें रासायनिक उर्वरकोंएवं कीटकनाशकों का इस्तेमाल कर रहा है । खाद्य पदार्थ विषाक्त होते जा रहे हैं और यही विषाक्त पदार्थ जब भोजन के माध्यम से मानव शरीर में पहुँचता है तो नाना प्रकार की बिमारियाँ हो जाती हैं । चाहे वायु प्रदूषण हो, जल प्रदषण हो, भूमि प्रदूषण या अन्य प्रकार के प्रदूषण हों सबसे पर्यावरण पर असर पडता है । पर्यावरण समस्या देश में बढ़ती जा रही है । इसको बचाने के लिए देशवासियों को अग्रसर होना चाहिए ।

सन्दर्भा

1. blogspot.in, wikipedia.org
2. google.com
3. समकालीन अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध ।

शास्त्री-तृतीयवर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

लाडली बेटी है ये हिन्दी

✍सुवृत्ति आर्या

संस्कृत की एक लाडली बेटी है ये हिन्दी ।
बहनों को साथ लेकर चलती है ये हिन्दी ।।
सुंदर है, मनोरम है, मीठी है सरल है ।
ओजस्विनी है और अनूठी है ये हिन्दी ।।
पाथेय है, प्रवास में, परिचय का सूत्र है ।
मैत्री को जोड़ने की सांकल है ये हिन्दी ।।
पढ़ने व पढ़ाने में सहज है, ये सुगम है ।
साहित्य का असीम सागर है ये हिन्दी ।।
तुलसी, कबीर मीरा ने इसमें ही लिखा है ।
कवि सूर के सागर की गागर है ये हिन्दी ।।
वागेश्वरी के माथे पर वरदहस्त है ।
निश्चय ही वंदनीय मां-सम है ये हिन्दी ।।
अंग्रेजी से भी इसका कोई बैर नहीं है ।
उसको भी अपनेपन से लुभाती है ये हिन्दी ।।
यूँ तो देश में कई भाषाएँ और है ।
पर राष्ट्र के माथे की बिंदी है ये हिन्दी ।।

शास्त्री-द्वितीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

उच्चतम न्यायालय एवं न्यायिक सक्रियतावाद

✍रवि कुमार आर्य

न्यायपालिका की भूमिका और महत्त्व

लोकतन्त्र में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का विशेष महत्त्व होता है । इसलिए माण्टेस्क्यू ने कहा था कि, लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि, न्यायिक शक्ति को विधायिनी तथा कार्मकारिणी शक्तियों से पृथक बनाया जाए । भारत में न्यायपालिका के स्वरूप की चर्चा करते हुए सुब्बाराव ने कहा है, 'भारत का संविधान संवैधानिक लोकतन्त्र की स्थापना करता है जिसमें भौगोलिक व कार्यात्मक आधारों पर शक्तियों का विभाजन किया गया है' । लोकतान्त्रिक न्यायपालिका न केवल मुकदमों का फैसला करती है वरन् अन्य अनेक महत्वपूर्ण कार्य भी करती है। जिन्हे निम्नलिखित रुप से वर्णित किया जा रहा है : (क) कानून की व्याख्या तथा झगड़ों का निपटारा, (ख) न्यायाधीशों द्वारा निर्मित कानून, (ग) जन अधिकारों की रक्षा, (घ) संविधान की व्याख्या, (ङ) परामर्श का कार्य, (च) जनहित के मुकदमे, (छ) सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में सहायक । भारत के सन्दर्भ में सामाजिक-आर्थिक व पर्यावरण के सुधार के क्षेत्र में न्यायपालिका को महत्व पूर्ण भूमिका रहो है ।

न्यायिक सक्रियतावाद

न्यायिक सक्रियता का अर्थ-

भारतीय न्यायिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली तथा उसके व्यवहार का तब तक सम्पूर्ण अध्ययन नहीं किया जा सकता जब तक कि हम सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन लाने में उसकी भूमिका का अध्ययन न करें । उन्होने संविधानिक सीमाओं को ध्यान में रखकर जा निर्णय दिये हैं उनके दूरगामी परिणाम हुए हैं । हम यहाँ उपरोक्त दोनों क्षेत्रों में न्यायपालिका की क्रियाशीलता का विस्तार से अध्ययन करेंगे । न्यायपालिका ने विधायिका तथा कार्यपालिका की इस क्षेत्र में अकर्मण्यता के कारण व्याप्त जनता की निराशा को दूर करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र का जिस प्रकार विस्तार किया है उससे जनता में लोकतन्त्र के प्रति आस्था बढ़ी है। न्यायपालिका के इन्हीं विधायी (रचनात्मक) क्रियाकलापों को 'न्यायिक सक्रियतावाद' की संज्ञा दी गई है । लोकतन्त्र का आधार है कानून का शासन और कानून के शासन की स्थापना तभी हो सकती है जबकि सम्बन्धित देश की न्याय व्यवस्था निष्पक्ष, स्वतन्त्र एवं समानता पर निर्भर हो, उत्तम न्याय व्यवस्था के लिए

आवश्यक है कि बोधगम्य, शीघ्रगामी, सरल अल्पवयी हो तथा राजनैतिक व प्रशासनिक नेतृत्व को कानूनों की उपेक्षा करके अपने महत्वपूर्ण पद का लाभ उठाकर अपने स्वार्थो की पूर्ति न करने दें ।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन तथा न्यायिक सक्रियतावाद न्यायपालिका ने सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों को न्याय प्राप्त हो सके इसके लिए कानून की विस्तृत व्याख्या की है । उसकी इस क्रियाशीलता ने उसे दुर्बल वर्गो की संरक्षिका बना दिया है । यहा उन कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों का उल्लेख किया गया हैजिनके कारण न्यायपालिका के न्यायिक सक्रियतावाद की स्थापना हुई है : (क) मजदूरों के हितों की रक्षा, (ख) दुर्बल वर्ग की रक्षा, महिलाओं के हितों की सुरक्षा को न्यायालय ने बहुत महत्व दिया है । दहेज के कारण होने वाली मृत्यु, महिलाओं पर होने वाले अन्य प्रकार के अत्याचार तथा तलाक दिये जाने की स्थिति में महिलाओं के हितों की सुरक्षा के लिए न्यायालय निरन्तर जागरुक रहे हैं । एक ओर न्यायालयों ने देवदासियों को सुरक्षित बनाया है तो दूसरी ओर सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1985 में तलाक दी गई बेसहारा मुस्लिम महिला शाहबानो को इद्दत काल के पश्चात भी आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने का आदेश देकर सराहनी कार्य किया है। एक अन्य फैसले में उच्चतम न्यायालय ने 1987 में कहा कि पति यदि दूसरा विवाह कर लेता है तब अलग रहने वाली पहली पत्नी को अपने पति से गुजारे के लिए मुआबजा लेने का अधिकार है। न्यायालयों ने शिशुओं व बालकों के हितों की सुरक्षा के लिए भी अनेक निर्णय दिये हैं । जहाँ तक अनसूचित जातियों के हितां की सुरक्षा की बात है, न्यायालय इस दृष्टि से भी बहुत जागरुक रहा है । अतः दुर्बल वर्ग की आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा के लिए अनेक निर्णय दिये हैं।[1] जमानत की राशि[2], निशुल्क कानूनी सहायता, इसके लिए मुकदमा प्रारंभ करने की सामान्य प्रक्रिया का इस्तेमाल करने की भी आवश्यकता नही है (ग) सरकारी व अन्य कर्मचारियों के हितों की सुरक्षा (घ) कम्पीटेशन फीस से विद्यार्थियों को छुटकारा (ङ) आर्थिक शोषणता के विरुद्ध संरक्षण 8. अन्य महत्वपूर्ण कदम ।

भ्रष्टाचार तथा न्यायिक सक्रीयतावाद

यह सर्व विदित है कि, वर्तमान में देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सर्वाधिक क्षति विधायिका तथा कार्यपालिका क आचरण से पहुँच रही है । यद्यपि सर्वत्र इसकी चर्चा हुई है कि, विधायिका के सदस्यों तथा मुख्यतः कार्यपालिका के सदस्यों के लिए आचारसंहिता बनाई जाए और उनकी जबाब देही निश्चित कि जाए किन्तु आज तक इस दृष्टि से कुछ नही हो पाया है । यह दुर्भाग्य है कि, आज भारत विश्व के सवाधिक भ्रष्ट देशों में से प्रमुख बन गया है ।

सौभाग्य यह है कि देश की न्यायपालिका ने परिस्थिति का आकलन करके जो क्रियाशीलता दिखाई है वह प्रशंसनीय है । भारत के जन-जन में न्यायपालिका का सम्मान बढ़ा है तथा लोकतन्त्र के महत्वपूर्ण स्तंभ के रुप में उसकी सराहना हुई है ।

न्यायिक सक्रीयता का मुल्यांकन

न्यायपालिका के न्यायिक सक्रीयता के विरुद्ध कुछ लाग निम्नलिखित दलील देते है

1. शक्तियों के पृथक्ककरण सिद्धान्त की अवहेलना

शक्तियों के पृथककरण सिद्धान्त पर आधारित होकर संविधान ने सरकार के तीनो अंगों के कार्यक्षेत्र को निश्चित कर रखा है । इसी प्रकार प्रशासन का कार्य कार्यपालिका को शोभा देता है । न्यायपालिका को नही ।

2. न्यायपालिका के सम्मान को ठेस पहुँचाने का भय-

हाल ही के कुछ दशकों में यह देखा गया है कि न्यायालय वास्तविकता को ध्यान में रखे बिना भावनाओं में बहकर निर्णय दे देतो है ।

उच्चतम न्यायालय में पहले से ही विवाह, विरासत, व्यापार, पारिवारिक सम्पत्ति, कृषि भूमि हत्या और आपराधिक मामलों को लेकर वर्षों से बड़ी संख्या में मुकदमें लम्बित पड़े है ।

सन्दर्भःसूचि

1. Subba Rao, Some constitutional problems, 1970
2. Abraham Henry J., The Judicial Process
3. B. B. Chaudhari, Indian Politics Comparative Perspective
4. Shukla V. N., Constitution of India

शास्त्री-द्वितीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

भारतीय संविधान तथा संरक्षणात्मक भेदभाव

✍कुन्दन गर्ग

एक लोकतान्त्रिक देश का लक्ष्य तथा उद्देश्य उसके समस्त नागरिकों को प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराना, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढाना है । यह ऊपर वर्णित आदर्श भारतीय संविधान की उद्देशिका में निर्देशित किए गए हैं । भारतीय संविधान ने समानता तथा स्वतन्त्रता रुपी महान् आदर्शो की पूर्ति करने में मदद की । समता के अधिकार के द्वारा भारतीय संविधान सभी भारतीयों को समान रुप से समान अवसर प्रदान करता है ।

जब दो व्यक्ति कम से कम एक आदर्शात्मक प्रासंगिक पहलू में एक ही समान स्थिति के हों तब उस स्थिति में उन दोनों के साथ समान रुप से व्यवहार होना चाहिए । यह ही सामान्य रुप से स्वीकृत औपचारिक समता का सिद्धान्त है जिसे अरस्तु ने प्लेटो के संदर्भ में सूत्रबद्ध किया था: ''समान विषयों पर समान रुप से व्यवहार करो'', कुछ लेखक समता के इस औपचारिक सिद्धान्त को एक बुद्धिसंगतता के कानून के द्वारा एक विशिष्ट संदर्भ में लागू होते हुए देखते हैं : यह असंगत है, क्योंकि समान विषयों के साथ बिना पर्याप्त तर्कों के असमान रुप से व्यवहार करना परस्पर विरोधी है, [Isaiah Berlin, "Equality"] ।

भारतीय संविधान में समता के अधिकार के लिए अनेक अनुच्छेद निश्चित किए गए है ।

भारतीय संविधान तथा संरक्षणात्मक भेदभाव

संरक्षणात्मक भेदभाव का तात्पर्य जनसमुदाय के सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक रुप से अलाभकारी समूहों की सामुहिक असुविधा को हटाने के लिए राज्य द्वारा अनेक नीतियों, नियमों, कानूनों का निर्माण करना है । भारत में संरक्षणात्मक भेदभाव ऐतिहासिक कारणों की वजह से प्रयोग किया जाता है ।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 राज्य को यह आदेश देती है कि वे भारतीय भू-क्षेत्र के भीतर किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेंगे ।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14, इग्लैंड के प्रोफेसर डायसी के सिद्धान्त एवं संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के चौदहवें संशोधन से प्रेरित ह । भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय कि

स्थापना के लिए अन्य अनुच्छेदों का भी उल्लेख है । जैसे अनुच्छेद 15 एवं 16 जिससे उन वर्गो के प्रति संरक्षणात्मक भेदभाव सम्भव हो जिन्होंने इतिहास के विकास के दौरान अनेक कष्ट झेले हैं। पीड़ित वर्गों को क्षतिपूरक लाभ दिलाने के लिए, समय-समय पर, भारतीय संसद कानूनों का निर्माण करती है ताकि उनके द्वारा पीड़ित वर्गों को सुरक्षा संभव हो तथा उन्हें अन्य वर्गों के बराबर उठने के लिए अवसर सम्भव हो । इस कार्य को आरक्षण के द्वारा उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।

इसके बारे में रोनाल्ड डवारकिन (Ronald Dworkin) ने समान व्यवहार के अधिकार तथा एक समान के आधार पर व्यवहार के अधिकार के बीच अन्तर को स्पष्ट करने के लिए एक सर्व व्यापक तथा सन्तोषजनक परीक्षण व्यवस्था प्रदान की है । इनके अनुसार, 'एक समान के आधार पर व्यवहार का अधिकार', समरुप व्यवहार में मौजूद होता है, [R. Dworkin, "Taking Rights Seriously"] परंतु हमने देखा है, समरुप व्यवहार न ही संभव है और न ही समता के अधिकार के साथ सुसंगत है । इसीलिए यह चिन्ता बनी रहेगी, तब तक व्यवहार में असमानता, समता के अधिकार के साथ सुसंगत रहेगी । (M. P. Singh, "Are Articles 15 (4) and 16 (4) Fundamental Rights?")

संरक्षणात्मक भेदभाव के पक्ष में तर्क

1. **एतिहासिक कारणों की वजह से संरक्षणात्मक भेदभाव आवश्यक है**

भारत में, संरक्षणात्मक भेदभाव की नीति को विकसित करने के पीछे ऐतिहासिक कारण उत्तरदायी है । न्यायमूर्ति रेड्डी (Reddy) कहते हैं कि ऐतिहासिक रुप से जाति व्यवस्था को जारी रखने की वजह से ही संरक्षणात्मक भेदभाव रुपी नीति अपनाई गई है ।

2. **संरक्षणात्मक भेदभाव की आवश्यकता**

डा. न्यायमूर्ति पी. वेणूगोपाल (Dr. Justice P. Venugopal) कहते है, ''संरक्षणात्मक भेदभाव (आरक्षण) परम्परागत जाति पदसोपान को गिरा देगा (अस्थिर) और भारतीय समाज की सामाजिक संरचना को एक समरुप (सजातीय) इकाई के रुप में परिवर्तित कर देगा जो सामाजिक एकीकरण को विकसित करेगा ।'' यह क्षतिपूर्ति न्याय है जो समाज के ऐतिहासिक रुप से प्रतिबंधित खण्ड के संगहित निर्योग्यताओं को समाप्त कर देगा ।

3. **सामाजिक न्याय**

संरक्षणात्मक भेदभाव नीतियाँ आवश्यक हैं और वह सामाजिक न्याय को लागू करने और भारतीय समाज में एक न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने में सहायक हैं । समतावादी

सिद्धान्त ऐतिहासिक रुप से लोगों के वंचित खण्ड को संरक्षणात्मक आरक्षण, वैधानिक अधिकार के रुप से माँगने के लिए प्रेरित करता है ।

4. **प्रतिस्पर्धा की न्यायोचित सम्भावना**

संरक्षणात्मक भेदभाव पिछड़े वर्गो को समाज के अधिक विकसित खण्डों के साथ समान अवसर प्रदान करता है ।

5. **समाज की मुख्य धारा से मिलन**

समाज के वंचित एवं पीड़ित वर्गो को अपनी त्यागी हुई प्रतिभा तथा व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर मिलता है । ताकि वे शिक्षा तथा व्यवसाय के संदर्भ में समाज की मुख्य धारा में शामिल होकर राष्ट्रीय जीवन के विकास में हाथ बढा सकें ।

6. **सामाजिक असन्तुलन को दूर करना**

संरक्षणात्मक भेदभाव सामाजिक असन्तुलन तथा तनाव को राष्ट्रीय जीवन से दुर करने में मदद करता है । और समाजवादी तथा लोकतान्त्रिक माध्यमों द्वारा व्यवस्थित प्रगति तथा विकास करने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है ।

संरक्षणात्मक भेदभाव के विरुद्ध तर्क

1. **संरक्षणात्मक भेदभाव कार्यविधिक रुप से ही अनुचित है**

कार्यविधिक रुप से यह बात अनुचित है कि कुछ वर्ग के लोगों को जन्म, जाति, वर्ग अथवा लिंग आदि के आधार पर विशेष विशेषाधिकार दिए जाएँ । केवल एक वर्ग अथवा जाति को अन्य वर्गो के दाँव पर सुरक्षा प्रदान करना लोकतंत्र के निश्चित आदर्शो के विरुद्ध है ।

2. **स्वत-स्वामित्व की मनाही**

रॉबर्ट नोजिक के अनुसार, असुविधायुक्त के ऊपर अधिकार बेतुका है । उसके अनुसार, यह एक व्यक्ति के स्वतः-स्वामित्व की मनाही है । सामाजिक दायित्व के नाम पर हम व्यक्ति के अधिकार को उपेक्षित नही कर सकते ।

3. **पूर्वजों के अपराध के लिए समकालीन पीढ़ी को दण्ड**

कुछ विचारकों काविचार है कि पूर्वजों के पापों की सजा समकालीन पीढ़ियों को देना अन्याय है । यह नीति आगे चलकर अराजकता तथा अशांति को जन्म दे सकती है ।

4. **प्रतिस्पर्धायुक्त समाज असमानता को जन्म देता है**

प्रतिस्पर्धायुक्त समाज हमेशा असमानता को जन्म देता है । मेधाविता को प्रतिस्पर्धा वाले वातावरण की आवश्यकता होती है ताकि व्यक्ति का व्यक्तित्व सम्भव हो । संरक्षणात्मक भेदभाव इस प्रकार से न्यायोचित्ता के सिद्धान्त की अवहेलना करता है ।

5. **असमानता एक प्राकृतिक तथ्य है** –

स्वतन्त्रता के समान असमानता भी एक प्राकृतिक तथ्य है । इसलिए, सामाजिक न्याय के नाम पर कोई भी कार्य, समाज से असमानता को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाए तो वह समाज की प्राकृतिक बनावट में बाधा उत्पन्न करेगा । संरक्षणात्मक भेदभाव अनेक विधानों, नियमों तथा नियमनों की माँग करता है । यह कार्य अवश्यम्भावो एक अधिकारवादी शासन–प्रणाली को जन्म दे डालेगा ।

उपसंहार (Conclusion)

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि संरक्षणात्मक भेदभाव केवल एक व्यवस्था है, परन्तु सामाजिक न्याय एक मूल सिद्धान्त जो अवसर की समता पर जोर देता है ।

संदर्भ सूचि

1. Aristotle, “Nicomachean Ethics” ।
2. M. P. Singh, “Are Articles 15 (4) and 16 (4) Fundamental Rights 9” ।
3. Dr. Justice P. Venugopal, “Implemetation of Social Justice through Reservation” ।
4. Dworkin, R., - Taking Rights Seriously
5. Iyer, Justice, V. R. K., - Social Justice-Sunset or Dawn
6. Rawls, John - A Theory of Justice
7. V. N. Shukla - Constitution of India

शास्त्री-प्रथम वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई–77

❖❖❖

GRAMMAR

✍Jayashri Bal

A noun is the name of any thing
As college or garden, book or ring.
An adjective tells us the kinds of noun
As great or small, blue or brown.
Instead of nouns, pronouns stand
My head, your watch, her doll, her hand.
Verbs tell of an action being done
Write or read, ring or run.
How things are done adverbs tell
As quickly, slowly, soon and well.
Conjuction joins the words together
As a man and a woman, cloth or leather.
A preposition stands before a noun
As on the door and in the crown.
An exclamation shows surprise
As how pretty or how wise.
All those are called parts of speech
Which reading, writing or speaking teach.

Shiksha Shastri
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

THE SWEET DAY

✍Priyanka Mahapatra

Dawn! So calm and innocent
The universe rises to movement
Sun! Rules over the sky
As the king delights the day
Noon! Becomes brighten
Giving every thing a pleasure
Man! Conspires with the sun
As to how master all upon
Coolie goes out soon
Never returns before Moon
Children! To play they gather
Cry comes a little later
Bings! Flatter and twitter
Earth becomes the
Eden of Shakespeare

Shiksha Shastri
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

I AM AN INDIAN

✍Malli Mani Rana

If anyone asks me who are you?
Then I will answer immediately
I am an Indian
If question will be, “What religion do you belong?”
I will answer, being a Hindu, I believe in “God”
As a Christian, I worship “Christ”
As a Muslim, I worship “Allah”
As the aim of all the religions is one
I worship all the religions
I count no distinction
Between the religions
Since “I am an Indian”

Shiksha Shastri
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

The World-Renowned Nose : A Satire On Modern India

Vighnesh Iyer

Vaikom Mohammad Bashir satirizes the people as well as the government and various political parties in this humorous story about Mookken'sexceptionally long nose. Mookken was an illiterate cook in a household.Hisroutine consisted of cooking,eating heartily, taking a good pinch of snuff,sleeping then waking up before he got busy with his daily chores in the kitchen. The only history of Mookken's nose is that it started growing when he enteredthe twenty fourth year of his life. Its tip touched his navel and he couldn't hide it from the people's gaze for long. It started attracting peoples' attention although it still behaved like a perfectly normal nose. But he was dismissed from his job as people crowded to have a look at his long nose. They were later joined by photographers and TV crews. The house where he worked was under siege at all times. It was burgled several times and an attempt was also made to kidnap their attractive teenaged daughter.After his dismissal, Mookken returned to his mother's house but there is no respite for him from the curious crowd. Ultimately he asked his mother to slam the front door on their face. The only consolation the poor, unemployed Mookken had was that his nose had won him everlasting fame. People were now prepared to pay to have a look at his long nose. Some even wanted to touch it. But no one bothered to ask him why he looked so weak or whether he had some food or not. But soon after this incident, fortune smiled on him. This increased his income and soon he became rich.

Mookken acted in a few films and became a millionaire.Six renowned poets wrote in praise of his nose. Nine biographies of his were published and his biographers became rich and famous. He now lived in a huge mansion, kept an open house and everyone could have a free meal there at any time of the day and a pinch of snuff also. He employed two beautiful young women as his secretaries, both of whom claimed to love him. Like his two secretaries, the public also loved Mookken and he was so much sought after by the media to give his opinions on current events. He was supposed to be knowledgeable on everything under the sun.He was honored by the President and the political parties vied with one another for him to join them.

When there was controversy about his long nose and Mookken fell from grace, he was reinstated when medical experts found his nose to be real. He was nominated as a Member of Parliament and several honorary degrees were bestowed on him by the Universities, which are supposed to be the seeds of learning. He was hailed as a hero once again by the public and it was announced that Mookken would now be honored with the title of "Mookkenshri". In this way *The World-Renowned Nose* is a satire on Modern India.

Shastri – 3rd Year
RSKS, Mumbai Campus.

Things Fall Apart: The Story of A Proud Clansman and His Downfall

✍Patanjali Sharma

Things Fall Apart deals with the clash of two cultures – the tribal Igbo culture in Nigeria and the Whiteman's culture – in the late 1880's. When Okonkwo, a proud clansman of Umuofia, sees the Whiteman making inroads into their traditional culture, faith and belief with Christianity and his brand of justice, he is shattered. He sees things falling apart in front of his eyes. Okonkwo's distaste for and rebellion against the Whiteman leads to his tragic downfall. He is the pivot around which the whole narrative revolves.

Tall and stout, Okonkwo had bushy eyebrows and a wide nose. He looked severed and breathed heavily. He walked on his toes, raising his heels. It then looked as if he would pounce upon someone. While speaking, he stuttered a little and lacked patience. The son of a drunkard and idle Unoka, Okonkwo had earned name and fame in the nine villages surrounding Umuofia by dint of his own hard work and achievements. When a strapping youth, Okonkwo had won fame as an unchallenging wrestler. A prosperous farmer now, he had two barns full of Yams. He had three wives and a number of children as well as two titles in the village for his bravery in war. In Umuofia's most recent war, Okonkwo was the first to bring home a human head, his fifth so far, and drank palm wine from his first human head on the auspicious occasions.

Okonkwo loved life and was trustworthy. Villagers held him in high esteem. He was chosen to go to Mbaino as a representative from Umuofia when a woman from the village was killed and he returned home with a virgin who was given as replacement for his murdered wife to Oguefi Ezendo, and a fifteen year old boy Ikemefuna, whom he looked after for three years. He made everyone in his family work hard in the fields because he did not lose heart in the face of failure and was a great survivor against all odds.

But Okonkwo became haughty and arrogant as he prospered. Once during the sacred week of peace he beat his second wife and had to atone for this sin against Ani, the Earth goddess by the angry priest Chielo, which he did reluctantly. Although he was attached to Ikemefuna, Okonkwo never showed his love openly. He was, however, worried about his own son Nwoye, who was idle and lazy. He loved his daughter Ezinma and she also loved him and looked after him whenever Okonkwo was downcast and distressed. An unexpected incident turned his life upside down when, on the day of Ezendo's funeral, a shot from Okonkwo's gun killed Ezendo's 16 year old son accidently. He was exiled for seven years for killing a clansman of his and

had to start life afresh in Mbanta, where he was helped by his uncle Uchendu. After initial setbacks, Okonkwo prospered there also.

Winds of change began to blew with the advent of the Whiteman and the Missionaries converting people to Christianity in large numbers. Among them was Okonkwo's own son Nwoye, whom he disowned. He wanted to challenge the Whiteman's attempts to change the way of life, culture and faith of his ancestors almost single handedly but failed. When the red earth church in Umuofia was demolished, Okonkwo was summoned by the District Commissioner; imprisoned and whipped along with other community leaders; and the villagers were fired. His head was shaved and he was humiliated publically.

Okonkwo could not live down the disgrace and he committed suicide by hanging himself from a tree. Since suicide was considered a crime against the earth, no one touched his dead body and he was not given a proper burial. The villagers paid the District Commissioner's men to bring his body down from the tree and burry it. As his friend Obierika said: "That man was one of the greatest men in Umuofia. You drove him to kill himself; now he will be buried like a dog…." *Things Fall Apart* is thus the story of a proud clansman's tragic downfall.

Shastri – 3rd Year
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

Decolonising the Mind

✍Nitesh Verma

In this story Ngugi talks about his upbringing, schooling and the emphasis that was placed on the teaching of English in preference to his native language Gikuyu. Colonial rule in Kenya, according to Ngugi, alienated people from their own culture and environment. The British colonised Kenya in 1895 but they did not interfere with the system of education till 1952 when a state of emergency was declared in the country. Then onwards English became the medium of instruction in schools and the native languages were rushed into the background. Proficiency in reading, writing and speaking in English became the touchstone of a student's intelligence, even though he was not familiar with his own language and culture.

Brought up on the stories of fables in Gikuyu language in his early years, Ngugi felt in harmony with his culture and environment. Children were told stories by grown-ups in their own language Gikuyu with which they could easily identify. These inspiring stories and fables taught them to be strong and cunning. They also inculcated the qualities of kindness, goodness, mercy and co-operation and warned them against evil, greed and selfishness. But the imposition of English as the medium of instruction and the emphasis placed on the language to the exclusion of native language destroyed the African students harmony with their culture and environment. It also presented a destroyed view of Africa reality to the outside world. When Ngugi started writing in his native language Gikuyu in 1977, he saw the shift as a part of the anti-imperialist struggle as he wanted to present the real picture of his culture and environment. He firmly believed that Africa has contributed greatly in terms of natural and human resources to the development and enrichment of Europe and America, yet it is looked down upon by the so called civilized world. The continued use of English as a medium of communication has turned the African reality upside down. So if Africans' write and communicate in their own languages and project their culture in the proper perspective to the outside world, it would go a long way in correcting the destroyed view that is projected about their culture and environment. Thus the adoption of his native tongue for creative writing is "part and parcel of the anti-imperialist struggles of Kenyan and African peoples."

Shastri – 3rd Year
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

THE POSITION OF WOMEN IN INDIAN SOCEITY

Asha Chheda

The position of women in ancient Indian society has been a very complicated one because of the paradoxical statements in different religious scriptures and sometimes in the same text at different places. Some have described their status as "equal to men" while others have held it not only in disrespect but even in positive hatred. This is why it has presented many problems to sociologist while evaluating women's status in India. The cultural history of India reveals that in India theoretically women enjoyed the status of a *Devi* (goddess)as described in many religious texts of Hindus, the majority community in India.

Though women enjoyed the theoretical importance which these texts outline for a wife who was considered as *Ardhangini* (better-half), but in practice she had a subservient position than man. She was regarded as a "chattle" [a corporal moveable property] with no rights. It was generally seen and believed that women had lower status with reference to power and influence than men in all the spheres of life viz. family, community, religion and politics. Till recently, it was held that up to marriage, she would be protected by her parents. After marriage, she would be looked after by her husband and after death of her husband, she will have to spend the remaining years of her life under the roof of her children without any will or desire or rights in the family.

She was not allowed to decide how money would be spent or invested. She had to take permission to spend money from her elders: be it father, brother or husband in the family. In brief, she had no personality of her own. Some scholars have explained this inferior status of women as a result of patriarchal code of living. The rigid codes of behavior as outlined for women in Brahmin texts were also responsible for the low status of women in India. This status of women was seen up to the independence of India. The domination of women increased in the Mughal Era. Hence, it is truly said by the famous feminist Simon de Beauvoir :"Women are not born they are made" but this was seen till our independence. After independence the position of women improved in Modern India.

Let us see "How was the position of women in Modern India?"

The status of women in modern India is a sort of paradox. If one hand she is at the peak of ladder of success, on the other hand she is mutely suffering the violence afflicted on her by her own family members. As compared to past, women in modern times have achieved a lot , but in reality they have to still travel a long way.

The sex ratio of India shows that the Indian society is still prejudiced against female. There are 933 females per thousand males in India according to the census of

2001, which is much below the world average of 990 females. There are many problems which women in India have to go through in daily routine. These problems have become part and parcel of their life and some of them have accepted them as their fate. There is an excellent quote by Brigham Young :

You educate a man; you educate a man

You educate a woman; you educate a generation

It's true when a woman is educated, a whole family is educated. Further, I would also like to share the thought for women by our father of nation Mahatma Gandhi: "The day a woman can walk freely on the roads at night, that day we can say that India has achieved independence".

Thus, the status of women has been raised in the eyes of law, but they are still far from equal to men in every sphere of life. In practice, they continue to suffer discrimination, harassment, humiliation and exploitation in and outside home. Barring a few urban educated families, a baby girl is never welcomed with as much ecstasy and happiness as a baby boy.

Letsponder on an excellent messageby Malala Yousafzaiproclaimed for all those who believe that women are weak:

They thought that the Bullet would silence us. But they failed…….

Weakness, Fear, Hopelessness Died. Strength, Power, and Courage was born

Shastri - 3rd year
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

DEATH AS A FOURTH CHARECTER IN *THE QUIET AMERICAN*

✍Ninada E. M

Set in Saigon during the 1950's the last days of the French Colonialism in Vietnam, *The Quiet American* astutely foresees the disastrous consequences of forthcoming involvement in the region.This is personified by Alden Pyle who is characterized by the cynical British correspondent as "The Quiet American". Pyle is, in fact, an undercover agent working for the notorious CIA and is preparing the ground for the Third Force that will come to replace both the French Colonialists and Communists. Fowler is forced to observe: "I never knew a man who had better motives for all the troubles he caused".

Alden Pyle is an innocent fellow who believes that others must surely share his deals & pureness of motive. He is convinced based on his adherence to the writings of York Harding, that there is a third way forVietnam somewhere between the Communists and the corrupt Colonial government. He has come to Vietnam to foster a group that will adhere to this Third way. The journalist Fowler, a cynical world-weary man of much wider experience, realizes that Pyle is a dangerous man because he is imposing his idealized vision on a group that is merely power-hungry.

Meanwhile Pyle has fallen in love with Phuong, Fowler's Vietnamese girlfriend. And while Fowler can offer her little because his wife refuses to grant him a divorce, Pyle offers her marriage and respectability in America. As Fowler finally abandons his neutrality and chooses sides – a choice made all the more ambiguous because of his romantic rivalry with Pyle.

The novel is a terrifying portrayal of innocence at large. Not only is Pyle seeking to replace the worn-out colonialists, he also falls in love with Fowler's beautiful Vietnamese girlfriemd Phuong, and seeks his agreement that would be the best for all concerned, if she wants to be with him. This, in fact, is the heart of the story.

The Shadow of Death

The novel *The Quiet American* is dominated by death, so much so that Conor Cruise calls it as the Fourth Character in the story where the other three being Pyle, Phuong & Fowler. Nowhere is this more apparent than in the scene where Fowler goes with Captain Trouin on a bombing mission. They drop Napalam bombs on a village and leave it burning. On their way back Captain Trouin, like a gracious host, shows Fowler the wonderful sunset. The ironical contrast between captain Trouin's civility as a host and the savagery he has just penetrated implies Graham Green's comment on the inhumanity of the civilized world. War ravaged Indo-China provides a landscape and a situation in which individuals and their values confront each other.

At the end of the novel, Fowler is left with a feeling of sympathy for the Quiet American & a sense of guilt for his own intervention which led to Pyle's murder. The novel concludes with Fowler's penitential reflection: "Everything had gone right with me since he (Pyle) had died, but how I wished there existed someone to whom I could say that I was sorry." His attachment to Phuong does not save him from being troubled by a sense of loneliness which causes men to invent God, "a being capable of understanding."

.

Shastri – 2nd Year
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

A POEM FOR MY MOM

✍Vishwas Bhaskar Mahajan

You are the sunlight in my day
You are the moon I see far away
You are the tree I lean upon
You are the one with whom my troubles are gone
You are the one who taught me life
How not fight, and what is right
You are the words inside my songs
You are my love, my life, my Mom
You are the one who cares for me
You are the eyes that help me see
You are the one who knows me best
When it’s time to have fun and rest
You hear my heart and you hear my screams
Afraid of light but looking for love
I thank God for He sent you from above
You are my friend, my heart, my soul
You are my greatest strength I know
You are the words inside my songs
You are my love, my life, my Mom

Prak-Shastri-2nd Year
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham,
Vidyavihar, Mumbai-400 077

❖❖❖

ती वेडी विचारते मला......

✍जगन्नाथ आर्य

ती वेडी विचारते मला......
का रे प्रेमात पडलास का?
कसे सांगु तिला
जेव्हापासुन पाहिलय तुला......
चैन नाहो एक पलमला
ती वेडी विचारते मला......
काय रे नाव सांग ना?
कसे सांगु तिला......
तिच हवी आहे आयुष्याच्या जोडीला
म्हणुच रोज हेच मागणे मागतो देवाला......
ती वेडी विचारते मला......
कारे मग सांगणार कधी तु तिला
वाटते भीती तुजे नाव घ्याला?
जाशील कदाचित् टाकुन एकट्याला?

आचार्य द्वितीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

प्रेम कुणावर करावे?

✍वैभव आर्य

प्रेम कुणावर करावे?
जो आपल्याला आवडतो त्याच्यावर,
की ज्याला आपण आवडतो त्याच्यावर?

प्रेम कुणावर करावे?
मन वेधून घेणा-या गुलाबावर,
की त्याला जपणा-या काटयावर?

प्रेम कुणावर करावे?
जन्म घेतलेल्या मायभूमीवर,
की हिच्यासाठी प्राण अर्पण करणा-या जवानांवर?

प्रेम कुणावर करावे?
रंगीबेरंगी दिसणा-या फुलपाखरावर,
की तिला बागडण्याची चेतना देणा-या वृक्षावर?

प्रेम कुणावर करावे?
सुंदर नाजूक वेलीवर,
की तिला आधार देणा-या वृक्षावर,

तुम्हीच सांगा......
प्रेम कुणावर करावे?
परवा भेटलेल्या मुलीवर
की आयुष्यभर आपल्यापासून जीव
ओवाळून टाकणा-या
''आई-वडिलांवर''

आचार्य प्रथम वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

''वास्तू'' एक अद्‌भुत शास्त्र

✍सचिन पांडुरंग जंगम

गेल्या काही वर्षापासून मोठ्या प्रमाणात वास्तुशास्त्राची चर्चा ऐकायला मिळतेय. घर बांधताना आपले घर वास्तुनुसार बांधले गेले पाहिजे, ह्याबाबत लोकांच्या मनात अनेक शंका आहेत.

सामान्य माणूस आयुष्यात एकदाच घर बांधतो. त्याच्या आयुष्यातील ती महत्त्वाची बाब असते. त्यामुळे चुकीची वास्तु बांधली तर आपल्याला त्या वास्तुत बरकत, सुख, आरोग्य, शांती मिळणार नाही ही भिती वाटते. तसेच या शास्त्राचे येत असलेले अनुभव यामुळे वास्तुशास्त्राची लोकप्रियता दिवसेंदिवस वाढू लागली आहे.

पृथ्वी पुर्व-पश्चिम लंबगोल तर दक्षिण-उत्तर लांबी कमी आहे. म्हणून पृथ्वीचे गुरुत्वाकर्षण बल दक्षिणोत्तर अधिक आहे. हे ज्ञान आजच्या विज्ञानाच्या कितीतरी वर्षे अगोदर आपल्या ऋषीमुनींनी जाणले होते. सृष्टीत पृथ्वी, जल, अग्नी, वायू, आकाश ही पंचतत्त्वे असतात. या प्रत्येकांचे गुणधर्म भिन्न आहेत. निसर्गातील विविध उर्जा या उर्जांचे स्वरुप, विद्यूत चुंबकीय लहरी, कंपन लहरी, ध्वनी प्रकाश यांचा अद्‌भुत खेळ चालू असतो. निसर्ग चक्राचा व त्याच्या गतीचा, नियमांचा प्रचंड अभ्यास केला. निरीक्षण, परिक्षण चिंतन, मनन, अवलोकन केले. माणसाची कोणती गतीविधी कधी, कशी, कुठे केली तर त्याला निसर्गाचा काय प्रतिसाद व परिणाम मिळाल्याचे अनुमान काढले. अनुभव घेतले आणि अनुभवाअंती मिळालेली शहाणपणाची शिदोरी ऋषीमुनींनी ग्रंथाद्वारे पुढच्या पिढीला दिली.

गुरुत्वाकर्षण आणि विद्युतचुंबकीय उर्जा या स्थूल प्रकारात मानल्यास आंतर आण्विक आणि प्राणिक या मात्र गूढ आणि सूक्ष्म स्वरुपात असतात. प्रकाशाचे स्वरुप याचप्रकारे सूक्ष्म स्वरुपात असून आजपर्यंत वैज्ञानिकांनी पकाशाची गणिते मांडताना या उर्जेने शास्त्रज्ञांना ब-याचदा फसविले आहे. वास्तुशास्त्रातील सर्व नियमावली थोडे व्यापक नजरेने पाहिल्यास एक साम्य सापडते.

अवकाशाचे अवतरण वायूत, वायूचे तेजात, तेजाचे जलात व जलाचे पृथ्वीत असा क्रम दिला आहे व त्यानुसार ज्ञानेंद्रियांना या पंचमहाभुतांचा शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध असा आविष्कार जोडला आहे. मानवी मनातील अतिआकाश किंवा घटाकाश आणि सृष्टीतील बाह्य आकाश ही श्वास या सेतूने जोडली आहेत. श्वासाच्या शरिरातील अविष्कारातून ब्रम्हाकाश व घटाकाश यांच्यात पंचमहाभूतात्मक देवघेव व ऊर्जेचे संवहन अपेक्षित आहे. श्वास या सेतूवरुन श्वास या माध्यमातून प्राणशक्तीचे संवहन चिदाकाशात होते. चिदाकाश आणि बाह्य आकाश यातील सुसंवादी अवस्था या

श्वास-प्राण या सेतुच्या निरिक्षणातून ओळखण्याचे शास्त्र म्हणजे शिव-स्वरोद्य होय. जर चंद्रनाडीचा प्रवाह चालू असेल तर निसर्ग आणि व्यक्ती वादात्म्य पावून हमखास यश मिळेल आणि जर पिंगला नाडीचा प्रवाह चालू असेल तर यात साथ देणार नाही. असे रहस्य शिव-स्वरोद यात सांगितले आहे. याचा मूलभूत यश-अपयश, जीवनातील घटना यांचा दिशांशी असणारा संबंध वास्तुशास्त्रात वर्णिला आहे. मानसिक पातळीवर भीती, असुरक्षितता व दु:ख म्हणजे या कंपनांचा एक प्रकाराचा गोंधळ असून सुख, शांती व सुबुद्धी म्हणजे या स्पंदन लहरींचा प्रीतिसंगम वा प्रसाद म्हणता येईल. या विद्युतचुंबकीय लहरी, स्पंदने, ध्वनी, प्रकाश यांचा सूक्ष्म नियमांचे पालन करुन एका स्वस्थ आकाराची निर्मिती म्हणजे 'वास्तुशास्त्र' होय. या शास्त्रात वर्णिलेले देवता, पिशाच्च, शुभ-अशुभ यांचे संकेत प्रवाह विरोध, स्पंदनशीलता व गोंधळ यांच्याशी निगडीत आहे. ब-याचशा गोष्टी प्रतिकात्मक असून खोल चिकित्सेची आवश्यकता आहे. जीवन सुखमय संगीत होण्यासाठी जीवनाशी संबंध असलेल्या सृष्टीतील सर्व घटकांचा यथायोग्य मेळ घालणे म्हणजे 'वास्तुशास्त्र' होय.

विश्वातील प्रत्येक धर्मातील महात्मा, पुराण, कुराण, बायबल आणि आजचे विज्ञान मान्य करतात की संपूर्ण सृष्टी पंचतत्वांनी बनले आहे. मुळात आपण सर्व पंचतत्वाच्या नाळेने बांधले गेलेलो आहोत तर मग आपले राहते घर आपली वास्तु वेगळी कशी असू शकेल. मग ही वास्तु कशी असावी?

स्त्रीगर्भेण तथा जीवो वर्धते भुवि नित्यशः ।
तथा भूगर्भमाहात्म्यात जीवराशिस्तु वर्धते ॥
तत्रत्यानां सुखं दिव्यं यावद्गर्भो न नश्यति ।
तस्माद्गर्भं शिल्पिवरैश्शाश्वतं कारयेद्भुवि ॥

ज्या प्रकारे स्त्रियांच्या गर्भामध्ये जीवाची नित्यश: वृद्धि होते त्याच प्रकारे घराची नींव (पाया) मध्ये स्थापित रत्नपात्र भूगर्भाच्या महात्म्यामुळे जीव-राशिंची वृद्धी होते. हे रत्न भूगर्भात स्थित असतात. तोपर्यंन्त तेथे राहणा-या जिवास सदैव सुख प्राप्त होते. या क्रियेस 'शाश्वत गर्भ' म्हणतात. म्हणून श्रेष्ठ भुमिकरांच्या मते भुमिमध्ये 'शाश्वत गर्भ' निर्माण करतो.

ईशान्येस पाण्याचा पृष्ठभाग ठेवल्याने सूर्यकिरणांचे विद्युतचुंबकीय प्रवाहाचे ध्रुवीकरण होवून मानवी शरीरास पोषक अशा आदित्य शक्तींचा संचार वास्तूत अखंडपणे उर्जाप्रवाह इशान्येच्या समचुंबकत्व असणा-या दिशेकडून प्राप्त होतो. म्हणून घराबाहेर, प्लॉटवर ईशान्येस चंद्राकार सरोवर/तळे जरुर राखावे किंवा घरात तांब्याच्या घंगाळ्यात पूर्णपात्र भरुन ईशान्येस पाणी ठेवावे.

दक्षिण व नैऋत्य दिशा पूर्णपणे बंद करुन त्या जड कराव्यात. त्यायोग गुरुत्वाकर्षण उर्जेचा प्रवाह विद्युतचुंबकीय स्त्रोतात समाविष्ट होऊन त्याचे लयबद्ध नर्तन वास्तूतील हानिकारक उर्जेचे स्वरुप बदलवून टाकतो. वातावरणातील आंतर आण्विक कणांचे विघटन न होता दक्षिणेच्या ऊर्ध्वगुरुत्वात, जडतत्वात या विषकणांचे विसर्जन होते.

पूर्व, अग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम हा सूर्याचा नित्यपथ असून त्या दिशांना सूर्याचे स्वरुप आदित्य, अग्नी, यम, गगन, वरुण या क्रमाने असलेल्या वास्तुपुरुष मंडळात वर्णिले आहे. अग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य दिशांना सूर्याची अग्नी, यम, गगन स्वरुपे अगदी भाजून काढतात व त्यायोगे या दिशांना क्रमशः विषम चंबकत्वाची कमाल अवस्था प्राप्त होते. यावरचा उपाय म्हणून वास्तुशास्त्रात अग्नेय, नैऋत्य प्रवाहांना वास्तुपासून दूर ठेवण्यासाठी बाध निर्माण केले आहेत. याकरता या दिशांना भिंती जाड करण्यानेही हेच तापमान नियमन होते.

योगशास्त्रात ईडा व चंद्रनाडीस शुभसूचक मानले असून या नाडीचा अधिकार उत्तर, पूर्व दिशेस असल्याचे सांगितले आहे. वास्तुशास्त्रातही वास्तूस उत्तर व पूर्व प्रवाह प्राप्त करुन देण्यासाठी फ्लॉटवर वास्तू दक्षिण-पश्चिम खंडात बांधण्यास सांगितले आहे. उत्तर, पूर्वेस अधिक जागा सोडण्यामागेही हेच तत्व आहे.

योगशास्त्रात पिंगला सूर्यनाडी ही क्रूर व कठोर कार्याची निदर्शक मानली असून या नाडीचा अधिकार दक्षिण वा पश्चिम दिशांशी निगडित आहे. तर वास्तुशास्त्रातही दक्षिण व पश्चिम प्रवाहांना बाधा आणण्यासाठीच नियमावली मांडल्या आहेत.

योगशास्त्रातील षण्मुखी मुद्रेच्या योगे पंचमहाभूतांचे स्वभाव, आकार, गुण, स्वाद, वर्णन केले असून वास्तुशास्त्रात पृथ्वी जलतत्वास अनुसरुन असणा-या गुणांनाच प्राधान्य दिले आहे. वायू, तेज व आकाश यांच्याशी निगडित गुणांची वजाबाकी केली आहे.

ज्योतिषशास्त्रात अवकहडा चक्रातील सत्तावीस नक्षत्रांचा संबंध पंचमहाभूते, रंग, आराध्यवृक्ष यांच्याशी असून याचाच उपयोग वास्तुशास्त्रातील विशिष्ट दिशादोषाची कंपनसंख्या भरुन काढण्यासाठी आराध्यवृक्ष व रंगयोजनांच्या द्वारे केला आहे. याचाच अर्थ सर्व वस्तुदोषांवर योगशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, विज्ञान व वास्तुनियमांच्या सखोल अभ्यासातून काही ना काही सूक्ष्म उपाययोजना करणे शक्य आहे.

शास्त्री - द्वितीय वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖

संस्कृत विद्यापीठामध्ये मराठीची आवश्यकता

✍प्रिया मंजुळे

गुरुकुल मधुन येणा-या विद्‌यार्थ्यांना मराठी भाषेची फारशी ओळख नसते. व्याकरणाचेही ज्ञान परिपूर्ण नसते. त्यामुळे त्यांना भाषा वापरताना ब-याच अडचणी येऊ शकतात. या संपुर्ण बाबींचा विचार केल्यास असे जाणवते की, प्राकशास्त्री विद्‌यार्थ्यांना अनुसरुन त्यांचा अभ्यासक्रम हा महामंडळाच्या अभ्यासक्रमानुसार वेगळा असावा. जेणेकरुन त्यांना मराठी भाषेचा वापर करणे अतिशय सोपे जाईल.

मी जेव्हा प्राक्‌शास्त्री प्रथम वर्षाला प्रवेश घेतला. तेव्हा मनामध्ये अनेक शंका उपस्थित झाल्या. संस्कृत विद्‌यापीठामध्ये मराठी भाषेची आवश्यकता आणि तिचा वापर या अनुषगांने आम्हाला ब-याच नवीन गोष्टी शिकायला मिळाल्या. मुळातच संस्कृत विद्‌यापीठाची रचना हो एका वेगळया दृष्टिकोनातून केली.या मध्ये विद्‌यार्थ्यांना सर्व विषयांचे ज्ञान दिले जाते व एक मुख्य विषय निवडावा लागतो. यामध्ये व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष असे विषय पर्यायी असतात. यांमधील एका विषयाची निवड करुन आपल्या शिक्षणाला प्रारंभ करता येता. विभिन्न विषय, विभिन्न शाखा, एक वेगळी संस्कृती या ठिकाणी पाहायला मिळते.

प्राकशास्त्री प्रथम वर्ष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई-77

❖❖❖